पढ़े और सीखें योजना

लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल

शंकर दयाल सिंह

विभागीय सहयोग
हीरालाल बाछोतिया

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

जुलाई 1991
आषाढ़ 1913
PD 15T-PM

प्रकाशन सहयोग

सी. एन. राव : अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग

यू. प्रभाकर राव : मुख्य उत्पादन अधिकारी
डी. साई प्रसाद : उत्पादन अधिकारी
सुबोध श्रीवास्तव : उत्पादन सहायक
सी.पी. टंडन : कला अधिकारी

आवरण : राष्ट्रीय स्मारक, अहमदाबाद के सौजन्य से

मूल्य रु. 8.00

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा अरावली प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, W-30, ओखला इण्डस्ट्रीयल एरिया, फेस-II, नई दिल्ली 110020 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

विद्यालय शिक्षा के सभी स्तरों के लिए अच्छे शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण की दिशा में हमारी परिषद् लगभग तीस वर्षों से कार्य कर रही है। हमारे कार्य का प्रभाव भारत के सभी राज्यों और संघशासित प्रदेशों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से पड़ा है और इस पर परिषद के कार्यकर्ता संतोष का अनुभव कर सकते हैं।

किन्तु हमने देखा है कि अच्छे पाठ्यक्रम और अच्छी पाठ्यपुस्तकों के बावजूद हमारे विद्यार्थियों की रुचि स्वतः पढ़ने की ओर अधिक नहीं बढ़ती। इसका एक मुख्य कारण अवश्य ही हमारी दूषित परीक्षा-प्रणाली है जिसमें पाठ्यपुस्तकों में दिए गए ज्ञान की ही परीक्षा ली जाती है। इस कारण बहुत ही कम विद्यालयों में कोर्स के बाहर की पुस्तकों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। लेकिन अतिरिक्त पठन में बच्चों की रुचि न होने का एक बड़ा कारण यह भी है कि विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए कम मूल्य की अच्छी पुस्तकें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हैं। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में इस कमी को पूरा करने के लिए कुछ काम प्रारंभ हुआ है पर वह बहुत ही नाकाफ़ी है।

इस दृष्टि से परिषद् ने बच्चों की पुस्तकों के रूप में लेखन की दिशा में महत्वाकांक्षी योजना प्रारंभ की है। इसके अंतर्गत, 'पढ़ें और सीखें' शीर्षक से एक पुस्तकमाला तैयार की जा रही है

जिसमें विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए सरल भाषा और रोचक शैली में निम्नलिखित विषयों पर बड़ी संख्या में पुस्तकें तैयार की जा रही हैं:

क. शिशुओं के लिए पुस्तकें
ख. कथा-साहित्य
ग. जीवनियाँ
घ. देश-विदेश परिचय
ङ. सांस्कृतिक विषय
च. वैज्ञानिक विषय
छ. सामाजिक विज्ञान के विषय

इन पुस्तकों के निर्माण में हम प्रसिद्ध लेखकों, अनुभवी अध्यापकों और योग्य कलाकारों का सहयोग ले रहे हैं। प्रत्येक पुस्तक के प्रारूप पर भाषा, शैली और विषय-विवेचन की दृष्टि से सामूहिक विचार करके उसे अंतिम रूप दिया जाता है।

परिषद इस माला की पुस्तकों को लागत-मूल्य पर ही प्रकाशित कर रही है ताकि ये देश के हर कोने में पहुँच सकें। भविष्य में इन पुस्तकों को अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने की भी योजना है।

हम आशा करते हैं कि शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के क्षेत्र में किए गए कार्य की भाँति ही परिषद की इस योजना का भी व्यापक स्वागत होगा।

प्रस्तुत पुस्तक 'लौहपुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल' के लेखन के लिए श्री शंकर दयाल सिंह ने हमारा निमंत्रण स्वीकार किया जिसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं। जिन-जिन विद्वानों, अध्यापकों और कलाकारों से इस पुस्तक को अंतिम रूप देने में हमें सहयोग मिला है उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

हिंदी में 'पढ़ें और सीखें' पुस्तकमाला की यह योजना अब सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर अर्जुन देव के मार्ग-दर्शन में चल रही है। उनके सहयोगियों में श्रीमती संयुक्ता लूदरा, डॉ० रामजन्म शर्मा, डॉ० सुरेश पांडेय, डॉ० हीरालाल बाछोतिया और डॉ. अनिरुद्धराम सक्रिय सहयोग दे रहे हैं। विज्ञान की पुस्तकों के लेखन में हमारे विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के डॉ. रामदुलार शुक्ल सहयोग दे रहे हैं। योजना के संचालन में डॉ० बाछोतिया विशेष रूप से सक्रिय रहे हैं। मैं अपने सभी सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद और बधाई देता हूँ।

इस माला की पुस्तकों पर बच्चों, अध्यापकों और बच्चों के माता-पिता की प्रतिक्रिया का हम स्वागत करेंगे ताकि इन पुस्तकों को और भी उपयोगी बनाने में हमें सहयोग मिल सके।

के० गोपालन
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ :

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा ? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा ? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है ?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

मो० क० गांधी

लेखकीय

इतिहास केवल तिथियों और घटनाओं से ही नहीं बनता है, बल्कि वह उन चरित्रों से बनता है, जो उस काल के गौरव होते हैं। सरदार वल्लभभाई पटेल राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के एक ऐसे ही योद्धा अथवा सेनापति थे, जिन पर हमें गर्व है। उनकी सशक्तता, दृढ़ता, संकल्पशक्ति तथा कार्यकुशलता का लोहा हर कोई मानता है। तभी वे गुजरात के एक सामान्य किसान परिवार में पैदा होकर, ग्राम पाठशाला में पढ़कर, खेतों में काम करके तथा वकालत का पेशा अपनाकर भारत के प्रथम उप-प्रधानमंत्री और गृह-मंत्री के पद तक पहुंचे। वारडोली सत्याग्रह की सफलता के बाद जब महात्मा गाँधी ने उन्हें 'सरदार' कहा, तो पूरा देश उन्हें इसी नाम से पुकारने लगा।

आजादी के पूर्व और उसके बाद के झंझावातों में सरदार पटेल की बहुत बड़ी भूमिका रही है। विशेष तौर से देशी राज्यों के विलयन और प्रशासन को चुस्त-दुरुस्त बनाने के कार्यों में जो पटुता सरदार ने दिखलाई वह कोई भूल नहीं सकता।

सरदार पटेल का जीवन जहाँ एक ओर हमारे राष्ट्रीय संग्राम का जीवित इतिहास है, वहीं नई पीढी के लिए प्रेरणास्रोत। गाँधीजी के बाद पं० जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभभाई पटेल आजादी की लड़ाई के सबसे बड़े सिपहसालार माने गए। नेहरूजी जहाँ अतिशय भावुक थे, वहीं सरदार आपादमस्तक व्यवहारिक।

सरदार पटेल के विशाल व्यक्तित्व तथा किसानों, मजदूरों और प्रशासनिक क्षेत्रों में किए गए कार्यों का पूर्ण विश्लेषण एक छोटी पुस्तक में संभव नहीं है। फिर भी मैंने प्रयास किया है कि लौहपुरुष, विस्मार्क, चाणक्य और सरदार के नामों और गुणों से युक्त इस महान स्वतंत्रता सेनानी का वास्तविक परिचय वर्तमान पीढ़ी को मिले।

मुझे प्रसन्नता है कि राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने मुझे यह उत्तरदायित्व सौंपा कि मैं सरदार पटेल पर लिखने के बहाने उनके विस्तृत जीवन का अध्ययन भी कर सकूँ। इसके लिए अनौपचारिक रूप से उसके निदेशक डॉ० के० गोपालन और प्रोफेसर अनिल विद्यालंकार (अवकाश प्राप्त) का मैं हृदय से आभारी हूँ। डा० हीरालाल बाछोतिया ने तो हर कदम पर मेरी सहायता की है, जो उनके स्वभाव का एक अंग है। इनके अतिरिक्त समय-समय पर गोष्ठियों और कार्यशालाओं में भी अनेक विद्वजनों, प्राध्यापकों, शिक्षकों तथा मित्रों ने इसके पाठन और वाचन में जो सक्रियता दिखलाई है, उससे इसमें निखार आया। मैं सबों को धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

शंकर दयाल सिंह

विषय-सूची

1

लौहपुरुष, सरदार, विस्मार्क या चाणक्य

भारत के वर्तमान इतिहास में किसी एक व्यक्ति के लिए इतने नाम या विशेषण प्रयोग में नहीं आए होंगे जितने वल्लभभाई पटेल के लिए। आजादी की लड़ाई में त्रिमूर्ति के नाम से प्रसिद्ध गाँधीजी, जवाहरलाल जी और वल्लभभाई पटेल की जोड़ी दो की बजाए तीन से बनती थी। उसमें गाँधीजी के लिए 'महात्मा' तथा जवाहरलाल जी के लिए 'पंडितजी' शब्द प्रचलित था। वैसे ही उस समय के कतिपय अन्य नेताओं, जैसे श्री सुभाष चन्द्र बोस के लिए 'नेताजी', राजगोपालाचारी के लिए 'राजाजी', डा० राजेन्द्र प्रसाद के लिए 'देशरत्न', चितरंजनदास के लिए 'देशबंधु' का प्रयोग भी काफी प्रचलित था। लेकिन वल्लभभाई पटेल के लिए चार विशेषण प्रयोग में आते थे–लौहपुरुष, सरदार, विस्मार्क और चाणक्य।

उनका दृढ़ निश्चय और किसी भी कार्य को अंतिम लक्ष्य तक ले जाने की क्षमता के कारण ही उन्हें 'लौहपुरुष' कहा जाता था। एक बार उन्होंने जो निश्चय कर लिया, जो ठान लिया, उसे पूरा करके ही दम लिया। उनके जीवन के अनेक प्रसंग इसके उदाहरण हैं। बैरिस्टर बनना है, तो बनकर दिखला दिया। नगरपालिका के चेयरमैन के रूप में अहमदाबाद को आदर्श नगर

बनाना है, तो बना दिया। खेड़ा और बारडोली के किसानों का कायाकल्प करना है, तो कर दिया। देशी रियासतों को भारत का अंग बनाना है, तो बनाकर दिखला दिया। उनका स्वरूप, उन्नत



मान्यवर वल्लभभाई पटेल

भाल तथा रेखांकित भृकुटि उनके संकल्प को बता देती थी। इसीलिए आदर के साथ वे 'लौहपुरुष' कहे जाते थे। लोहे का आदमी–जो न तो कभी मुड़ता है, न झुकता है वैसा ही था व्यक्तित्व वल्लभभाई पटेल का।

'सरदार' के नाम से वे स्वतंत्रता आन्दोलन में जाने जाते थे तथा पूरा देश आदर के साथ इसी नाम से उन्हें पुकारता भी था। वारडोली में स्वयं उन्होंने सत्याग्रह आन्दोलन की शुरुआत की। वहीं किसानों ने उन्हें अपना 'सरदार' माना और गाँधीजी ने भी 'सरदार' कहा तो वह जन-जन के सरदार हो गए। प्राय: 'सरदार' का अर्थ सिक्ख भाइयों से लिया जाता है। गुजरात में 'भाई' 'दादा' जैसे शब्द भले ही प्रचलित रहे हों, 'सरदार' शब्द उतना प्रचलित कभी नहीं रहा, लेकिन गुजरात ने जब 'सरदार' कहा तो पूरा देश उन्हें सरदार कहने लगा। जब कभी मैं सरदार शब्द को सुनता हूँ तो ऐसा भान होता है, मानों जो असरदार हो, वही सरदार हुआ। वैसे सरदार का अर्थ उस व्यक्ति से उभरता है, जो किसी दल या संस्था या आन्दोलन का नेतृत्व करे।

जर्मनी का महान शक्तिशाली पुरुष था विस्मार्क। उसने पूरी दुनिया को अपनी शक्ति से हिला दिया था। उसने जर्मनी को एक बड़ी शक्ति के रूप में विश्व के सामने उभार दिया था। वल्लभभाई को इन्हीं विशेषताओं के कारण भारत का विस्मार्क कहा जाता है। उन्होंने सबसे पहले अपने आपको शक्तिशाली बनाया। उसके बाद अपने आसपास के गाँवों को। उसके बाद जिस शहर में वह रहते थे, उसे। उसके बाद जब देश की आजादी के बाद उनके ऊपर गृह मंत्रालय का भार पड़ा तब पूरे देश को एक सूत्र में बांधकर राष्ट्र का स्वरूप दिया। इसी कारण उनके समय में गृहमंत्री के लिए 'स्वराष्ट्रमंत्री' शब्द प्रचलित था। अनेक समस्याओं को सुलझाते हुए, कमजोर और जर्जर

राष्ट्र को अपने पाँवों पर खड़ा करना मामूली परीक्षा की घड़ी नहीं थी। विस्मार्क के समान ही अपने दुश्मनों के लिए कडे और दोस्तों के लिए मधुर दोनों गुण उनमें विद्यमान थे।

अब आइए 'चाणक्य' शब्द पर। वल्लभभाई को भारतीय राजनीति का चाणक्य भी कहा जाता है। चाणक्य, वह इतिहास पुरुष है जिसने नदवंश का संहार कर चन्द्रगुप्त मौर्य को गद्दी पर बैठाया था। आजादी के बाद देश के सामने सबसे बड़ी समस्या 600 देशी-रियासतों की थी, जिन्हें अँग्रेजों ने यह अधिकार दे दिया था कि वे स्वतंत्र रहें या भारत अथवा पाकिस्तान जिसमें चाहें मिल जाएँ। एक तिहाई भारत ऐसी ही देशी-रियासतों का था, जिनमें हैदराबाद से लेकर जम्मू-कश्मीर तक के शक्तिशाली रजवाड़े थे। बिखरे भारत को एक सूत्र में पिरोने का असंभव कार्य वल्लभभाई पटेल ने अपने बुद्धि-कौशल के बल पर कर दिखाया, जिसके कारण उन्हें 'चाणक्य' कहा गया। चाणक्य और वल्लभभाई पटेल के चित्रों को एक साथ हम रखें तो दोनों के ललाट की रेखाओं में समानता भी दिखलाई देती है।

इस प्रकार आधुनिक भारत के इतिहास में वल्लभभाई के लिए जितने नाम या विशेषण प्रयोग में आए सभी सार्थक लगते हैं। उनमें लौहपुरुष की दृढ़ता थी, सरदार का नेतृत्व था, विस्मार्क की शक्ति थी तथा चाणक्य की बुद्धिमत्ता थी। ऐसे व्यक्ति का जीवन केवल अपना न होकर पूरे राष्ट्र का गौरव होता है। आने वाली पीढ़ियाँ ऐसे व्यक्तियों से ही प्रेरणा ग्रहण करती हैं। वल्लभभाई पटेल का जीवन सदियों तक लोगों को प्रेरित करता रहेगा। उनकी व्यवहारिक बुद्धि का लोहा उस समय के सभी लोग मानते थे। निर्भयता और कार्यकुशलता कोई उनसे सीखे। वे अपने संबंध में प्रायः कहा करते थे कि आदमी का सही मूल्यांकन उसके मरने के बाद ही होता है।

आज वे हमारे बीच नहीं हैं। हम सही माने में उनका

मूल्यांकन करके यह पाते हैं कि सरदार पटेल न होते; तो शायद आजाद भारत इस रूप में शक्तिशाली न हो पाता। इसका मुख्य कारण यह था कि सरदार पटेल किसी काम को अधूरे मन से नहीं करते थे। जिस काम में वे लगे उसमें निष्ठा, चतुराई, कर्मठता तथा दृढ़ता का मेल देखने में आता है।

गाँधीजी ने उन के बारे में कहा था– 'सेनापति की चतुरता अपने सहायकों की पसंदगी पर सर्वथा निर्भर रही है। मेरे साथ आने के लिए कई तैयार थे, किन्तु मन में अस्पष्ट सी एक शंका थी कि उपसेनापति किसे बनाया जाए। वल्लभभाई को प्रथम बार देखने पर मैं मन ही मन सोचने लगा कि यह अक्खड़ पुरुष भला क्या काम आएगा। किन्तु जैसे-जैसे वे मेरे निकट संपर्क में आते गए–मेरा यह विचार दृढ़ता में बदलता गया कि मुझे तो वल्लभभाई जैसे आदमी की ही बड़ी आवश्यकता है। यदि मुझे वल्लभभाई न मिलते, तो जो काम हुआ है, वह न होता। मैं यह अनुभव कदापि नहीं भूलूँगा।'

ऐसे व्यक्ति को शब्दों में बांधना कठिन होता है। 'सरदार वल्लभभाई पटेल' के लेखक श्री आई. जे. पटेल ने ठीक ही लिखा है कि 'सरदार ऐसे लोगों में से थे जो केवल अपनी किस्मत का ही निर्माण नहीं करते हैं, वरन् उनकी किस्मत के साथ भारत की भी किस्मत जुड़ी हुई थी, जिसे उन्होंने गढ़ा।'

* * *

2

वल्लभभाई का बचपन

दूर से चमकता ललाट, उन्नत भाल, गहरी नीली आँखें, फौलादी चेहरा, दृढ़ता की मूर्ति—यही है सरदार वल्लभभाई पटेल की सही पहचान। वल्लभभाई का जन्म 31 अक्टूबर 1875 में गुजरात के बोरसद तहसील के करमसद नामक गाँव में एक बड़े कृषक परिवार में हुआ था। पिता श्री झबेरभाई और माँ लाडबाई थीं।

वल्लभभाई के पिता ने 1857 के प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लिया था। इस संबंध में महादेवभाई देसाई ने 'वीरवल्लभभाई' नामक पुस्तक में लिखा है—'मल्हारराव होल्कर ने उन्हें कैद कर लिया था। कैद करके उन्हें अपने सामने बंधा हुआ रखकर एक बार मल्हारराव शतरंज खेल रहे थे। जिस शतरंज में राजा गलत चाल चलते, तब झबेरभाई कहते रहते— 'राजा, इस मोहरे को यूँ चलिए।' मल्हारराव चकित हो गए और कैदी को छोड़कर मित्र बना लिया।'

वल्लभभाई पांच भाई थे और एक बहन। सोमाभाई, नरसिंहभाई, विट्ठलभाई, काशीभाई तथा डालीबेन। गुजरात में हर पुरुष के नाम के आगे 'भाई' और महिला के नाम के आगे 'बेन' अथवा 'बहन' शब्द जोड़कर आदर प्रदान किया जाता है।

वल्लभभाई और विट्ठलभाई दोनों अपनी प्रतिभा के बल पर हर क्षेत्र में खूब चमके। वल्लभभाई में दृढ़ता, संयम, अनुशासन, कर्त्तव्य परायणता और जबाबदेही का भाव शुरू से ही था। निर्भयता उनकी पहचान थी तथा सच्चाई पर डटे रहना उनका जीवन मंत्र। इसे उनके बचपन की दो घटनाओं से समझा जा सकता है।

बचपन में एक बार उन्हें बगल में बड़ा सा फोड़ा निकला। गाँव की प्रथा के अनुसार वैद्य जी से सलाह ली गई तो उन्होंने कहा– 'लोहा गर्म करके फोड़े को दाग दो।' परिवार के सभी लोग इस भयानक उपचार से घबराए। लेकिन बालक वल्लभ बिना किसी हिचकिचाहट के इसके लिए तैयार हो गए। सवाल यह पैदा हुआ कि लोहे को लाल करके दागे कौन। इसके लिए कोई तैयार ही न हो रहा था। अंत में वल्लभभाई ने दृढ़ता के साथ कहा–यदि तुममें से कोई तैयार नहीं है तो, मैं स्वयं दाग लूँगा। और देखते ही देखते उन्होंने गरम लाल सलाख ली और फोड़े को बिना 'उफ' किए दाग दिया।

वल्लभभाई नाडियाद स्कूल में छात्र थे। स्कूल के एक शिक्षक पाठ्य-पुस्तकों का व्यापार करते थे तथा उनकी हिदायत थी कि सभी लड़के उनसे ही पुस्तकें खरीदें। जो लड़का उनसे पुस्तक नहीं खरीदता था उसे वे तरह-तरह से तंग करते थे। वल्लभभाई को यह बात अच्छी नहीं लगी और उन्होंने इसके खिलाफ मोर्चाबंदी की। छात्रों को संगठित कर स्कूल में हड़ताल करवा दी। अंत में शिक्षक को झुकना पड़ा और उन्होंने अपनी गलती स्वीकार की।

वल्लभभाई जब स्कूल में पढ़ते थे, तभी से उनका लगाव खेती-बाड़ी के प्रति था। बचपन में वह नियमित रूप से अपने खेतों की बोआई, कटाई, रखवाली में परिवार के अन्य सदस्यों के साथ लगे रहते थे। इसीलिए उन्हें गांवों, किसानों, खेती तथा

अन्य समस्याओं का भरपूर ज्ञान था। कहने वाले यह भी कहते हैं कि वे बड़े पद पर रहे, लेकिन उनका संस्कार किसान का ही रहा। धोती, कुरता, पाँवों में मामूली सी चप्पल तथा कंधे पर चादर। देश के हर हिस्से के ग्रामीणों का लगभग यही पहनावा है।

सरदार पटेल के साथी तथा उनके जीवनी-लेखक श्री नरहरि पारीख ने प्रारंभ से ही वल्लभभाई के स्वच्छ रहने की प्रवृत्ति को माता की देन बताते हुए लिखा है– 'सरदार को स्वच्छता तथा सुघढ़पन की आदत माता की तरफ से विरासत में मिली है। केवल व्यक्तिगत स्वच्छता ही नहीं, परन्तु आसपास की चीजें, आंगन, मोहल्ला और आजकल दिल्ली में जिस बंगले में रहते हैं, उसके कम्पाउन्ड का एक-एक कोना साफ रखने का उनका आग्रह होता है। मैं उनके साथ बहुत सी संस्थाओं में घूमा हूँ। वहाँ के मकानों तथा कम्पाउन्ड में कुछ भी टूटफूट या अव्यवस्था हो और उसके नक्शे या रचना में कोई खामी हो, तो उसकी तरफ उनका ध्यान गए बिना नहीं रहता। इसी तरह सब कुछ ठीक हो तो उसकी कदर करने की भी उनकी सहज ही वृत्ति हो जाती है। यह चीज उनके सारे परिवार में है।'

जिस भांति छोटा बिरवा अपने जन्म से ही लहलहाकर बड़ा वृक्ष बनने की सूचना देता है, वैसे ही एक बालक में भी अपने बचपन से ही भविष्य में बड़े बनने के लक्षण दिखाई देते हैं। सरदार वल्लभभाई पटेल भी ऐसे ही बालक थे। उस समय उन पर केवल उनके माता-पिता को ही गर्व था, लेकिन आगे चलकर पूरे देश को उन पर गर्व हुआ।

उनका बचपन घर के कामकाज में अधिक बीता। उन्होंने जीवन में जो भी काम हाथ में लिया उसे अंत तक पूरा-पूरा निभाया। हालांकि एक नटखट बच्चे के गुण भी उनमें विद्यमान थे, जिसका वर्णन आगे के पन्नों पर मिलेगा।

* * *

3

स्कूल से वकालत तक

सरदार वल्लभभाई पटेल का जीवन अनेक स्थितियों में से गुजरा है। गाँव की पाठशाला से उन्होंने अपनी पढ़ाई शुरू की। करमसद से वे पेटलाद गए, जहाँ उन्होंने अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी की।, उसके बाद 1897 में नडियाद से उन्होंने मैट्रिक की पढ़ाई समाप्त की। मैट्रिक के समय में उनकी आयु 22 वर्ष की थी। इससे पता चलता है कि उनकी पढ़ाई कितनी देर से शुरू हुई।

एक ओर वल्लभभाई को पढ़ने की लगन थी, तो दूसरी ओर पिता को भी इसका शौक था। हालाँकि जिस तरह के गृहस्थ-परिवार में वल्लभभाई पटेल पैदा हुए थे, वहाँ पढ़ाई का वातावरण नहीं था। इस सबंध में वल्लभभाई स्वयं कहते हैं– 'मेरे पिताजी को मुझे पढ़ाने का बड़ा शौक था। रोज सबेरे के समय मुझे खेत ले जाते। खेत में काम करने के लिए नहीं, आते-जाते रास्ते में पहाड़े बुलवाने और रटवाने के लिए। खेती के बारे में भी वे कहते हैं– 'हम सब भाइयों ने भी खेत में काम किया था।'

करमसद की पाठशाला हो, पेटलाद की माध्यमिक शाला हो या नडियाद का हाई स्कूल, हर जगह गरीबी और अभाव के बीच उन्होंने पढ़ाई की। पांचवी कक्षा में वे जब पेटलाद में थे उस समय

पाँच अन्य लड़कों के साथ एक मकान किराये पर लेकर रहते थे, जहाँ खाना खुद बनाते थे। लेकिन अभावों में रहकर भी लगन के कारण वे सफलता की सीढ़ी पर चढ़ते गए। हालांकि मैट्रिक में एक साल वे फेल हो गए, परन्तु निराश न हुए।

मैट्रिक के बाद वल्लभभाई ऊँची शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे। लेकिन परिवार का बोझ ऐसा था और रिश्तेदारों का भी कहना था कि कोई काम करना चाहिए। कोई सलाह देता था कि मास्टरी करो, तो कोई किसी अच्छे वकील के पेशकार होने पर जोर देता था। स्वयं वल्लभभाई चाहते थे कि विलायत जाकर बैरिस्टरी पास करें और ठाट से जीवन यापन करें।

अंतिम विजय परिस्थितियों की हुई। वल्लभभाई ने मुख्तारी शुरू की। फौजदारी मुकदमों में वल्लभभाई की अधिक पैठ थी। अपनी कर्मठता और तेज बुद्धि के बल पर जिले के वह सबसे नामी मुख्तार गिने जाने लगे। प्रैक्टिस चमकी, तो रुपये भी बरसने लगे।

कहा जाता है कि वल्लभभाई जटिल से जटिल मुकदमा अपने हाथ में लेते थे। यह भी कहा जाता है कि जो मुकदमा वे हार जाते थे तो उस मुवक्किल से फीस भी नहीं लेते थे।

इन्हीं दिनों उनके पास एक कठिन मामला आया। इलाके के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति पर हत्या का जुर्म था। कई चश्मदीद गवाह भी इसमें थे। जो भी तथ्य सामने थे उसमें उस आदमी को फाँसी अथवा उम्र कैद की सजा निश्चित थी। मुकदमे में यह कहा गया था कि मुजरिम ताँगे पर तेजी से चला जा रहा था और घर के बरामदे में बैठे एक आदमी की उसने हत्या कर दी। वल्लभभाई ने एक ही बात पर बहस की कि किसी ने यह नहीं कहा कि ताँगा रुका और उस पर से मुजरिम उतरा, तब उसने हत्या की और रुके हुए ताँगे पर चढ़कर चला गया। अँग्रेज जज को यह दलील

पंसद आई और उसने मुजरिम को साफ रिहा कर दिया। ऐसी थी वल्लभभाई की तर्कशक्ति की विशेषता।

इसके साथ ही धैर्य, एकाग्रता तथा जबावदेही का विचित्र संगम वल्लभभाई के जीवन में था। 1909 की बात है, जब वे नडियाद कोर्ट में एक गंभीर मुकदमे में बहस कर रहे थे। उसी समय किसी ने उनके हाथ में एक तार लाकर दिया। वल्लभभाई ने उसे पढ़ा और जेब में रखकर जिरह करते रहे। मुकदमा जब समाप्त हुआ, जिसमें उनकी जीत हुई तब लोगों को यह जानकारी मिली कि तार में उनकी पत्नी झबेर बा के निधन का दुखद समाचार था। लोग अवाक रह गए।

झबेर बा अपने पीछे 5 साल की पुत्री मणिबेन और 4 साल के पुत्र डाह्याभाई को छोड़कर गईं। वल्लभभाई पर इन दोनों बच्चों के लालन पालन का भार भी पड़ा, लेकिन वे कभी भी विचलित नहीं हुए।

वल्लभभाई के मन में एक बात घर कर गई थी कि मुख्तारी में जीवन नहीं बिताकर बैरिस्टरी की पढ़ाई विलायत जाकर जरूर करनी है। जहाँ चाह है, वहीं राह भी है। उन्होंने दिन-रात मेहनत करके पारिवारिक भरण-पोषण के अतिरिक्त विलायत जाने भर के पैसे भी जमा कर लिए। वल्लभभाई ने जब सारी व्यवस्था करली और टिकट आदि का बंदोबस्त कर लिया, तब ऐन वक्त पर उनके बड़े भाई विट्ठलभाई पटेल ने कहा मैं बड़ा भाई हूँ इसलिए पहले मुझे विलायत जाने दो। लक्ष्मण के समान सिर झुकाकर वल्लभभाई ने अपने बड़े भाई की आज्ञा मान ली और अपने खर्चे पर ही उन्हें विलायत भेज दिया। विट्ठलभाई सन् 1908 में बैरिस्टरी पास करके विलायत से लौटे। उसके दो वर्ष बाद 1910 ई० में वल्लभभाई पटेल बैरिस्टरी पढ़ने विलायत रवाना हुए।

* * *

4

बैरिस्टर पटेल

वल्लभभाई के प्रारंभिक जीवन को देखने से ऐसा पता चलता है कि उन्हें दो बातों का बहुत शौक था। अँग्रेजी पढ़ने का और बैरिस्टर बनने का। इससे वह समझते थे कि अँग्रेजों के समान ठाट-बाट से रह सकेंगे। उस समय भारतीयों की मनोवृत्ति यही थी। वल्लभभाई ने 1921 में एक सभा में कहा था– 'भाई मोहनलाल ने मेरा परिचय देते हुए कहा कि मैं पहले अँग्रेजों की हूबहू नकल करता था, यह सच है। साथ ही यह बात भी सही है कि मैं फुरसत का समय खेल-कूद में बिताता था। उस समय मेरा विश्वास यह था कि इस अभागे देश में विदेशियों की नकल करना ही उत्तम कार्य है। मुझे शिक्षा भी ऐसी ही दी गई थी कि इस देश के लोग हलके और नालायक हैं। हम पर राज्य करने वाले परदेशी ही अच्छे और हमारा उद्धार करने में समर्थ हैं। इस देश के लोग तो गुलामी के ही योग्य हैं। ऐसा ज़हर इस देश के तमाम बच्चों को पिलाया जाता है। मैं बचपन से ही यह देखने और जानने के लिए तड़पता रहता था कि जो लोग सात हजार मील दूर विदेश से राज्य करने आते थे उनका देश कैसा होगा। मैं तो साधारण घराने का था। मेरे पिताजी मंदिर में जिंदगी बिताते थे और उसी में उन्होंने वह पूरी की। मेरी इच्छा पूरी करने का उनके पास साधन नहीं था। मुझे मालूम हुआ कि दस-पन्द्रह

हजार रुपया मिल जाए तो विलायत जा सकता हूँ। मुझे कोई इतने रुपये देने वाला नहीं था। मेरे एक मित्र ने कहा कि इडर स्टेट में रुपया दरबार से मिल सकता है। उस मित्र के काका इडर में ही रहते थे। इसलिए मेरा वह मित्र और मैं दोनो इडर गए और शेखचिल्ली जैसे विचार करके गाँव की प्रदक्षिणा करके वापस चले आए। अन्त में निश्चय हुआ कि विलायत जाना हो तो रुपया जमा कर लेना चाहिए। बाद में वकालत की पढ़ाई की और वकालत का धंधा करके, खर्च लायक कमाई करके विलायत जाने का फैसला किया।'

कितने मार्मिक और साफ शब्दों में वल्लभभाई पटेल ने अपने जीवन का लक्ष्य, आर्थिक स्थिति और अपनी दृढ़ता को सामने रखा है। विलायत जाने की उनकी दृढ़ इच्छा किसी शान-शौकत और ठाट-बाट के लिए नहीं थी, बल्कि उनका मुख्य उद्देश्य था बैरिस्टर बनकर धन कमाना और यश कमाना। संकल्प से बढ़कर कोई शक्ति नहीं। अतः बिना किसी व्यर्थ का प्रचार किए ज्योंही उनके पास इतने साधन जुटे, उन्होंने विलायत के लिए पानी वाले जहाज में टिकट की व्यवस्था की, कुछ जरूरी सामान लिया, बड़े भाई विट्ठलभाई पटेल जो हो आए थे उनसे मार्ग दर्शन लिया और कुछ पुस्तकें अपने साथ लेकर अगस्त 1910 में विलायत के लिए रवाना हो गए।

'सरदार वल्लभभाई' के लेखक श्री नरहरि पारीख ने उनकी यात्रा का बड़ा सजीव वर्णन किया है— 'जहाज कभी देखा नहीं था। विलायती पोशाक तो उसी दिन पहनी थी। मेज-कुर्सी पर छुरी-कांटे से कैसे खाते हैं, न देखा था, न जाना था। ज्यों के त्यों देहाती की तरह जहाज पर चढ़ गए। बम्बई से रवाना होते वक्त विट्ठलभाई ने काठियावाड़ के एक छोटे रजबाड़े के ठाकुर का साथ कर लिया था। अदन तक समुद्र में खूब तूफान रहा, इसलिए खूब कै हुई और बैचेनी भी रही। सरदार कहते हैं कि चार दिन में

सारा पेट साफ हो गया। बाद में कुछ ठीक लगने लगा। विट्ठलभाई से कुछ कानून की पुस्तकें साथ ले ली थीं। रोमन ला अदन से मारसेल्स पहुँचने तक पूरा पढ़ डाला।'

एक बड़ा संकल्प लेकर वल्लभभाई लंदन पहुँचे और दिन रात अपनी पढ़ाई में जुट गए। उनके सामने बैरिस्टरी परीक्षा पास करने के सिवाय और कोई भी दूसरा लक्ष्य नहीं था।

विलायत में एक गंभीर और सौम्य विद्यार्थी के रूप में उनकी ख्याति थी। सवेरे ही पुस्तकालय में पहुँच जाना और उसके बंद होने की सूचना जब चपरासी दे तब निकलना। इसका फल भी निकला। बैरिस्टरी की परीक्षा में वल्लभभाई ने प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त किया और 50 पौंड का वार्षिक वजीफा भी हासिल किया। उस जमाने में किसी भी भारतीय के लिए यह गौरव की बात थी।

गुजरात के एक साधारण कृषक परिवार का लड़का, जिसने गाँव की पाठशाला से प्रारंभिक शिक्षा ग्रहण की हो, वह जब 1913 में बैरिस्टर बनकर आया तो लोगों की नज़र में वह और ऊँचा उठ गया। अब वल्लभभाई ने अहमदाबाद में अपनी वकालत शुरू की। शीघ्र ही वे अहमदाबाद के 3-4 नामी बैरिस्टरों में गिने जाने लगे। उनके बड़े भाई विट्ठलभाई पटेल बैरिस्टरी कम और राजनीति अधिक करने लगे थे। परिवार का भार पूर्णरूप से वल्लभभाई पर ही था।

उनके बैरिस्टर जीवन का स्वाभाविक चित्र उनके समकालीन सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी श्री पी० जी० मावलंकर ने इस प्रकार खींचा है–

'अलबेला युवक, आधुनिक फैशन के कोट-पैंट में सजा। कीमती बैंत की हैट, सिर पर टेढ़ी पहने। समा लेने वाली भेदक दृष्टि। मितभाषी। आगन्तुक व्यक्ति का सस्मित स्वागत करने

वाला लेकिन वृत्ति से सदा अलिप्त, अपने में ही खोया। चेहरे पर दृढ़ता की छाप और गांभीर्य। अपने व्यक्तित्व की श्रेष्ठता के प्रति सतत सजग और आत्म विश्वास से सदा ओत-प्रोत। स्वभाव से कठोर और सामने वाले को कदम-कदम पर प्रभावित करने की महत्वाकांक्षी सूचक प्रवृत्तियों में खोया हुआ।' दरअसल यह बैरिस्टर वल्लभभाई की तस्वीर न होकर भविष्य में लौहपुरुष के नाम से उभरने वाले सरदार पटेल की वास्तविक तस्वीर थी।

उस जमाने में जो लोग वल्लभभाई से परिचित थे उनका कहना है कि वल्लभभाई के समान गवाहों से जिरह करने वाला तथा अच्छी तरह पैरवी करने वाला कोई दूसरा बैरिस्टर नहीं था। बहुत जल्दी इनका दबदबा कोर्ट पर और अफसरों पर छा गया। उधर मोव्वकिलों में भी ख्याति फैली।

वल्लभभाई अधिक केस लेने में विश्वास नहीं करते थे। उन्होंने अपनी फीस भी ओरों से ज्यादा रखी थी। महीने में 10-12 दिनों की कमाई से वे अपना, पूरे परिवार का तथा सगे-संबंधियों का भी काम चला लेते थे। इसके अतिरिक्त अपने बड़े भाई विट्ठलभाई पटेल की भी वे आर्थिक सहायता करते थे।

वकालत का पेशा बुद्धि का खेल है। वल्लभभाई ने उन्हीं दिनों यह साबित कर दिया था कि उनकी विलक्षण बुद्धि के अँग्रेज जज तथा अधिकारी भी कायल हैं। जिस कोर्ट में वल्लभभाई का कोई केस होता था, वह जूनियर वकीलों से ठसाठस भर जाती थी कि वल्लभभाई की दलील से लाभ उठाएँ।

सच कहा जाए तो उन दिनों 1914 से 1920 तक के काल में अहमदाबाद की कोर्ट वल्लभभाई की थी और बम्बई कोर्ट विट्ठलभाई की। ऐसी स्थिति में यह भी स्वाभाविक था कि उस समय के राजनीतिक नेताओं की, जिनमें गाँधीजी प्रमुख थे, उनकी नजर वल्लभभाई की ओर जाती। वल्लभभाई राजनीति

से अपने को दूर रखना चाहकर भी उधर झुकते जा रहे थे।

उस काल की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन हमें बताता है कि देश के सुप्रसिद्ध वकील इस ओर खिंचे चले आ रहे थे। गाँधीजी ने 1921 में जब असहयोग आन्दोलन का नारा दिया तब सबसे सक्रिय भाग वकीलों ने ही लिया। इसके लिए कलकत्ता के देशबंधु चितरंजन दास, पटना के डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, इलाहाबाद के पं० मोतीलाल नेहरू और सर तेज बहादुर सप्रु, गुजरात के भूलाभाई देसाई और पी० जी० मावलंकर तथा अन्य भागों के भी कई नामी वकीलों-बैरिस्टरों ने अपनी चलती वकालत को लात मार दी।

ऐसे में वल्लभभाई कब तक 'बैरिस्टर पटेल' बने रहते?

* * *

5

उस समय का गुजरात

प्राय: यह समझा जाता है या कहा जाता है कि वल्लभभाई पटेल को विदेशी मामलों का ज्ञान नहीं था, वह तो राष्ट्र तक ही सीमित थे। जबकि हम भूल जाते हैं कि वल्लभभाई पटेल की शिक्षा 1910 से 1913 तक यानी तीन-चार वर्षों तक विलायत में हुई। इस बीच उन्होंने विदेश के अनेक अनुभव प्राप्त किए होंगे और राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों को समझा देखा होगा।

सन् 1913 में जब वल्लभभाई पटेल लौटकर भारत आए तब अहमदाबाद में केवल सात-आठ बैरिस्टर थे। वल्लभभाई के प्रवेश करते ही वकालतखाने में एक तहलका मच गया, क्योंकि जिस निर्भयता और साहस के साथ अँग्रेज साहबों के सामने वल्लभभाई बहस करते थे और कभी-कभी उन्हें डाँट भी देते थे, यह दूसरों के वश की बात नहीं थी। यही कारण था कि कम समय में ही वल्लभभाई न केवल सबसे प्रखर वकील माने जाने लगे, वरन् इनकी धाक भी खूब बैठ गई।

देश में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का व्यापक प्रभाव पड़ने लगा था। वकील और पढ़े लिखे लोग इसकी ओर आकृष्ट हो रहे थे। लेकिन वल्लभभाई की इसमें विशेष रुचि नहीं थी। वे रात-दिन अपने पेशे में ही लगे रहते थे। इससे जो समय बचता था वह क्लब तथा सैर-सपाटे में बीतता था। दूसरी ओर इनके बड़े भाई

विट्ठलभाई राजनीति की ओर इस प्रकार आकर्षित हो रहे थे कि एक दिन उन्होंने वल्लभभाई से कह भी दिया– 'तुम पारिवारिक जिम्मेदारियाँ संभालो, मैं देश सेवा में सक्रिय रूप से भाग लेना चाहता हूँ।'

दक्षिण अफ्रीका से वापस आने के बाद गाँधीजी सबसे पहले अपनी जन्मभूमि गुजरात को ही जगाना चाहते थे। इसके लिए वे गुजरात के कई हिस्सों में जाकर लोगों का आह्वान करते। वकीलों पर भी गाँधीजी की अपील का प्रभाव पड़ रहा था। लेकिन वल्लभभाई इससे बिल्कुल अलग थे। उनके जो साथी रात-दिन गाँधीजी की चर्चा किया करते थे, उनका भी वे मखौल उड़ाने से बाज नहीं आते थे। गाँधीजी के पीछे पागल बने अपने साथियों को जब तब वल्लभभाई कहा करते थे– 'न जाने कैसा पागलपन इन बैरिस्टर (गाँधीजी) के सिर पर सवार हो गया है। यह ब्रह्मचर्य का पालन करता है, अनाज पीसता है, कंकड़ और पत्थर हटाकर रास्ते पर झाड़ू लगाता है। और इस तरह देश-सेवा करने वालों की एक फौज तैयार करना चाहता है। ऐसे कहीं देश-सेवक तैयार हुए हैं। वहाँ जाने की बजाए तुम लोगों को मेरे साथ ताश खेलना चाहिए। संभव है इसी में से एकाध दाव वकालत की बाजी जीतने में सहायक सिद्ध हो जाए।'

उन दिनों वल्लभभाई पटेल की वकालत की धूम थी लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं था कि वे उस समय की गतिविधियों या भारत की राजनीति से बेखबर थे। उन्हें हर बात की सूचना थी, लेकिन वह इसी बात से संतोष कर रहे थे कि एक भाई जब वहाँ है तो पूरे परिवार को रहने की क्या जरूरत है। वल्लभभाई ने एक जगह अपने भाषण में कहा है– 'स्वतंत्रता चाहिए तो इस देश में संन्यासी होना चाहिए। इसलिए हम दोनों ने निश्चय किया कि दोनों में से एक देश सेवा करे और एक कुटुम्ब सेवा। उस वक्त से मेरे भाई ने इतनी अच्छी तरह चलता हुआ धंधा

छोड़कर देश सेवा का काम शुरू कर दिया। अपने घर का काम चलाने का भार मेरे सिर पर आया। इस प्रकार पुण्य कार्य उनके हिस्से में आया और मेरे सिर पर पाप का काम आ पड़ा। परन्तु यह समझकर मन को बहलाता था कि उनके पुण्य में मेरा हिस्सा है।'

विलायत से वापसी के बाद वल्लभभाई का पूरा जीवन पाश्चात्य और बड़े शालीन ढंग से चल रहा था। वेश-भूषा और रहन-सहन सब कुछ अपने ढंग का। इस संबंध में उनकी बेटी मणि बेन का कहना है कि जब तक वे गाँधीजी के प्रभाव में नहीं आए थे, तब तक हम लोगों को भी विदेशी कपड़ों में और पहनावे में ही रहना पड़ता था।

इसी बीच 'गुजरात सभा' का अधिवेशन हुआ, जिसमें गाँधीजी ने भाषण देते हुए कहा—'गुजरात सभा को चाहिए कि वह सरकार के पास किसी भी प्रकार की भीख मांगने की सलाह प्रजा को न दे। बल्कि अपने अधिकारों के प्रति सजग रहकर उनकी प्राप्ति हेतु जनता को तैयार करे।'

गाँधीजी की इस सशक्त और दृढ़ आवाज ने वल्लभभाई को न केवल अपनी ओर आकृष्ट किया, वरन् झकझोर कर रख दिया। उन्हें लगा कि जिस आदमी को वे मात्र स्वयं सेवक और आश्रमवासी समझ रहे थे, वह ब्रिटिश सरकार को इस भाषा के साथ चुनौती देने का साहस रखता है, जैसा किसी और में नहीं है। वे मौके की तलाश करने लगे।

उन दिनों गुजरात में राजनीति और सामाजिक जागरण का काम गुजरात सभा के द्वारा हो रहा था। इसकी स्थापना काँग्रेस की स्थापना के एक वर्ष पूर्व 1884 में हुई थी। वल्लभभाई 1913 में विलायत से बैरिस्टर होकर वापस आए और 1915 में इसके

सदस्य बने, हालांकि इन कार्यों में अधिकतर विट्ठलभाई पटेल सक्रिय थे।

गुजरात सभा ने 1917 में गाँधीजी को अपना अध्यक्ष चुना। गाँधीजी की अध्यक्षता में गोधरा में परिषद् की बैठक हुई। यह स्थान वल्लभभाई का अपना था, जहाँ उन्होंने दस वर्षों तक वकालत की थी, अतः उन्होंने यहीं गुजरात सभा के माध्यम से सार्वजनिक जीवन में महत्वपूर्ण ढंग से प्रवेश करने का निश्चय किया। गोधरा की परिषद् में मोहम्मद अली जिन्ना भी शामिल हुए। लोकमान्य तिलक भी इसमें आए।

गाँधीजी ने सभी नेताओं और प्रतिनिधियों से गुजराती में भाषण देने का आग्रह किया। कायदे आजम जिन्ना ने भी गुजराती में ही भाषण दिया। लोकमान्य तिलक ने मराठी में भाषण दिया, जिसका अनुवाद गुजराती में प्रस्तुत किया गया। गाँधीजी ने इसके पहले भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के मंचों से सरल हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी में सबों से भाषण करने का आग्रह किया था। वे ब्रिटिश सरकार के साथ-साथ विदेशी भाषा से भी लोगों को बचाना चाहते थे।

गोधरा सम्मेलन में बेगार प्रथा का विरोध किया गया। अँग्रेज साहब लोग गाँवों के लोगों से जबरदस्ती काम लेते थे। अबतक गुजरात सभा में ब्रिटिश सरकार के प्रति भक्ति प्रदर्शित की जाती थी। पहली बार गाँधीजी ने उस पर चोट की। वल्लभभाई को उनकी स्पष्टता और दृढ़ता पसंद आई और उन्होंने अपने को गुजरात सभा के कार्यों के साथ जोड़ लिया। यहीं से उनके जीवन का एक नया अध्याय शुरू हुआ।

* * *

6

सार्वजनिक जीवन की शुरूआत

कोई भी पद बड़ा या छोटा नहीं होता। पद की गरिमा बड़ी या छोटी होती है। यह व्यक्ति के आचरण तथा उसके कार्यों पर निर्भर करता है। जब वल्लभभाई पटेल अहमदाबाद म्युनिसिपलिटी के चेयरमैन बने तब उन्होंने नागरिकों की मूल समस्या पर ध्यान दिया। ये समस्याएँ थीं जल, सफाई, संडास, पानी-निकासी आदि। इसका उचित हल निकाला। लोगों को विश्वास हुआ कि एक आदमी ऐसा भी है, जो कहता ही नहीं है, करता भी है।

इसके अतिरिक्त बाढ़, महामारी, सूखा हर स्थिति का सामना सामाजिक स्तर पर करने की क्षमता वल्लभभाई ने दिखलाई। यह उनके भविष्य में किए जाने वाले बड़े कार्यों की झलक प्रस्तुत करती है।

सामाजिक कार्यों की दिशा गाँधीजी ने रचनात्मक कार्यों के द्वारा प्रस्तुत की थी। अनजाने ही वल्लभभाई पर इसका प्रभाव पड़ रहा था। यों भी गुजरात की भूमि में सेवा भाव, कर्त्तव्यपरायणता, आचरण शुद्धता और जगहों से अधिक है। नरसी मेहता से लेकर संत तुकाराम तक ने गुजरात-महाराष्ट्र की भूमि को इस प्रकार से सिंचित किया है कि वहाँ के लोगों में

रचनात्मक वृत्ति के साथ ही सत्य, करुणा, दया की प्रधानता है। गाँधीजी और वल्लभभाई इसके प्रतीक कहे जा सकते हैं।

सन् 1917 में वल्लभभाई ने सर्वप्रथम अपनी सामाजिक जागरूकता को जिस मंच पर लाने का निर्णय लिया था वह था अहमदाबाद नगरपालिका का चुनाव। वे उसमें विजयी हुए तथा सैनिटरी कमेटी के चेयरमैन बनाए गए। उसी साल अहमदाबाद में भयंकर प्लेग फैला। प्रतिदिन सैकड़ों लोग दम तोड़ने लगे। ऐसे समय में वल्लभभाई ने जिस साहस, त्याग तथा कर्मठता का परिचय दिया, वह गुजरात के लिए एक आदर्श बन गया। उन्होंने अहमदाबाद नगर के लोगों को आसपास के जंगलों में चले जाने का निर्देश दिया। बहुत मुश्किल से प्लेग को जिसे महामारी कहते हैं, वश में किया जा सका। लेकिन साल भी नहीं बीता था कि 1918 में इन्फ्लुएंजा की चपेट में पूरा शहर आ गया। इससे लोगों को बचाने के लिए वल्लभभाई ने अपनी जान की बाजी लगा दी और वे इसमें सफल भी हुए।

उन दिनों अपनी लोकप्रियता और कर्मठता के बल पर वल्लभभाई ने नगरपालिका को सेवा का सच्चा मंच बनाने की दृष्टि से सर्वसम्मति से पाँच प्रस्ताव पास करवाए–

1. नगरपालिका का उपयोग स्थानीय स्वराज्य के प्रथम सोपान के रूप में किया जाए।
2. नगरपालिका संस्थाओं का उपयोग सामान्य जनता के लिए निर्भयता पूर्वक किया जाए।
3. नगरपालिका में सरकार द्वारा नियुक्त व्यक्तियों को किसी भी समिति में न रखा जाए।
4. सरकारी व्यक्तियों को अधिक सम्मान या मानपत्र देने की प्रथा बंद की जाए।

5. नगरपालिका के हरिजन कर्मचारियों के लिए नए मकान बनवाए जाएँ।

इन निर्णयों से पता चलता है कि वल्लभभाई में धीरे-धीरे एक परिवर्तन आ रहा था, जिसकी पहली सीढ़ी नगरपालिका थी, लेकिन वही आगे चलकर पूरे देश की राजनीति का आधार बनी। गुजरात में आज भी नगरपालिकाएँ काफी कारगर और सशक्त हैं। मानना पड़ेगा कि इसकी नींव वल्लभभाई जैसे लोगों ने रखी।

जिन दिनों वल्लभभाई अहमदाबाद की इन समस्याओं से जूझ रहे थे गाँधीजी बिहार के चम्पारन नामक स्थान में किसानों के खिलाफ नीलहे साहबों के जुल्म के विरोध में सत्याग्रह चला रहे थे। गाँधीजी को अपने प्रांत की इन गतिविधियों की जानकारी प्रायः मिलती थी। इस प्रकार वह भी वल्लभभाई के कार्यों से परिचित हो रहे थे।

गोधरा सम्मेलन में वल्लभभाई पहली बार गाँधीजी के संपर्क में आए थे। हालांकि उनका गाँधीजी के सत्याग्रह और अहिंसा जैसी बातों में अभी भी कोई रुचि नहीं थी। उन्होंने ऐसा किया भी, लेकिन भविष्य को यह मंजूर नहीं था, वह तो वल्लभभाई के लिए कुछ और ताने-बाने बुन रहा था। वह राजनीति से अलग समाज सेवा में ही अपना समय देना चाहते थे। इस बीच गाँधीजी ने अहमदाबाद के श्रमिकों की समस्याओं में रुचि लेना प्रारंभ किया। उनके हस्तक्षेप से कई ऐसी बातों का समाधान हुआ, जिन्होंने वल्लभभाई को बरबस उनकी ओर आकृष्ट कर लिया। इस प्रकार उनकी राजनीति समाज सेवा के सोपान से शुरू हुई जो क्रमिक रूप से मंजिल की ओर बढ़ी।

उन दिनों समाज सेवा का सबसे बड़ा माध्यम जिला परिषद् तथा नगरपालिकाएँ हुआ करती थीं। वल्लभभाई ने अहमदाबाद नगरपालिका के माध्यम से वहाँ की जरूरी समस्याओं पर ध्यान

दिया, जैसे पीने का पानी, सफाई, नाली, शिक्षा, शहर में बेतरतीब ढंग से बढ़ती आबादी। वल्लभभाई ने एक-एक कर इन समस्याओं को निबटाना आरम्भ किया। आम नागरिकों को जब राहत मिली तो वे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके।

वल्लभभाई गंभीर स्वभाव के साथ-साथ दृढ़ प्रतिज्ञ भी थे। जिस काम को ठान लेते थे पूरा करके ही दम लेते थे। कम बोलना और अधिक काम करना उनके स्वभाव का अंग था। उन्होंने ठान लिया कि अहमदाबाद के लोगों की सबसे बड़ी समस्या पानी की है, जिसे हल करना है। दो वर्ष में ही उन्होंने उसे करके दिखला दिया। पानी का संबंध रोजमर्रा के जीवन से है। अतः हर आदमी को वल्लभभाई का यह कदम ठोस लगा और वे नगर वासियों की श्रद्धा और प्रेम के पात्र बन गए।

उसके बाद वल्लभभाई रचनात्मक कार्यों की ओर मुड़े। हरिजनों के लिए कम लागत के मकान और बालकों के लिए उचित शिक्षा हेतु आश्रम विद्यालय उनके उल्लेखनीय कार्य हैं। इन्हीं दिनों अहमदाबाद नगर बाढ़ की भयानक चपेट में आ गया। सरकार हाथ पर हाथ देकर बैठ गई। वल्लभभाई ने इस चुनौती को स्वीकार कर लोगों की मदद से बाढ़ पीड़ितों की सहायता और उनके पुनर्वास का अद्भुत कार्य किया।

सच कहा जाए तो नगरपालिका तो वल्लभभाई के लिए भावी कार्यक्रमों के लिए एक बहाना मात्र थी। इससे यह पता चलता है कि सार्वजनिक जीवन की शुद्धता और व्यवहारिकता के बल पर वह बड़े से बड़े कार्य को निबटाने की क्षमता रखते थे। गाँधीजी उन दिनों चम्पारन में थे, उन्हें अहमदाबाद की इन घटनाओं की जानकारी मिलती थी तो वे वल्लभभाई की कार्य क्षमता पर मुग्ध होते थे।

सामाजिक अथवा सार्वजनिक जीवन के इन कार्यों में वल्लभभाई की सरकारी कर्मचारियों तथा अफसरों से भिडन्त भी हो जाया करती थी। वल्लभभाई उनकी खिल्ली उड़ाए बिना नहीं रहते थे। उधर अंग्रेज अफसर उन्हें 'गरम खोपड़ी वाला' कहकर अपमानित करना चाहते थे। ऐसा एक समय आया भी, जिसमें कलक्टर को वल्लभभाई के सामने झुकना पड़ा।

वल्लभभाई कड़ाई के साथ लोकहित में नियमों का पालन करना जानते थे। न तो पक्षपात और न हीं व्यक्तिगत स्वार्थ। इसका असर पड़ रहा था। इनके नाम और काम की दुंदुभी घर-घर में बज रही थी। अहमदाबाद का यह नामी बैरिस्टर धीरे-धीरे गुजरात के हर कोने में चर्चित हो रहा था। वल्लभभाई रचनात्मक कार्यों की ओर मुड़ते जा रहे थे।

* * *

7

गाँधीजी से संपर्क

गाँधीजी से वल्लभभाई के संपर्क की कहानी बहुत दिलचस्प है। उसके पहले उस समय की राजनीतिक परिस्थिति और भारतीय राजनीति में गाँधीजी के आगमन के संबंध में कुछ जान लेना आवश्यक है।

भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना 1885 में हुई। इसके बाद ही राष्ट्रीय जागरण की दिशा में तेजी आई। 1906 में कलकत्ता काँग्रेस की अध्यक्षता करते हुए दादाभाई नौरोजी ने पहली बार कहा कि काँग्रेस का लक्ष्य स्वराज्य है। 1907 में एक ओर लाला लाजपतराय और सरदार अजीत सिंह को देश निकाले का आदेश हुआ तो दूसरी ओर सूरत में काँग्रेस नरम और गरम दो दलों में बँट गई। 1909 में मार्लेमिन्टों सुधारों की घोषणा की गई। 1911 में सम्राट पंचम जार्ज की भारत यात्रा और बंग-भंग आन्दोलन हुआ। 1912 में गोपाल कृष्ण गोखले की मृत्यु हुई और 1916 में तिलक जी द्वारा होमरूल लीग की स्थापना की गई। 1917 में रूस में जारशाही का अंत हुआ और लेनिन के नेतृत्व में रूसी क्रांति सफल हुई। उसी वर्ष भारत में गाँधीजी ने बिहार के चम्पारन में निलहों द्वारा किसानों पर अत्याचार के खिलाफ सत्याग्रह आन्दोलन की शुरुआत की। 1918 में अहमदाबाद में कपड़ा मिलों में काम कर रहे मजदूरों की हड़ताल में गाँधीजी का



लौहपुरुष वल्लभभाई पटेल

प्रवेश हुआ। 1919 में ही जलियांवाला बाग का भीषण हत्याकांड हुआ। पूरे देश में भयानक रोष फैला। 1920 में लोकमान्य तिलक का देहावसान हुआ। उसी वर्ष कलकत्ता में काँग्रेस का अधिवेशन और वहाँ गाँधीजी का असहयोग आन्दोलन प्रस्ताव पास हुआ।

उपरोक्त घटनाओं और तिथियों को सामने रखने पर आगे की बात समझने में सुविधा होगी। वह है, भारतीय राजनीति के मानचित्र पर गाँधीजी का आगमन तथा वल्लभभाई का उनसे संपर्क। 1915 तक गाँधीजी का नाम भारतीयों के लिए अपरिचित था। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने सत्य तथा अहिंसा को अपना सबसे बड़ा अस्त्र बनाकर रंगभेद के खिलाफ सत्याग्रह आंदोलन शुरू किया था, लेकिन उसकी जानकारी भारत में कुछ ही लोगों को थी। इसी बीच पहली बार वे 1916 में लखनऊ काँग्रेस में शामिल हुए। उनका विदेशी भाषा की जगह भारतीय भाषा का प्रयोग, किसान की वेश-भूषा, धार्मिक और नैतिक बातचीत आम जनता को अपनी ओर आकृष्ट करती थी। उनके पहले कॉंग्रेस के मंच पर किसी भी नेता ने ऐसा प्रभाव नहीं डाला था।

गाँधीजी ने 1915 में दक्षिण अफ्रीका को सदा के लिए छोड़ दिया और भारत आकर कुछ दिन शांति निंकेतन में रहने के बाद अहमदाबाद को अपना स्थायी केन्द्र बनाया। यहाँ उन्होंने एक किराए का मकान लेकर 'कोचरब आश्रम' की स्थापना की। आश्रम में वे शिक्षा से लेकर सत्याग्रह और शारीरिक श्रम संबंधी अनेक प्रयोग करना चाहते थे। अपनी योजना को लोगों तक पहुँचाने की दृष्टि से वे एक दो बार गुजरात क्लब में आए। यहाँ उन दिनों पढ़े लिखों और वकीलों का जमघट रहता था। ऐसी ही एक बैठक में जब गाँधीजी बोलने आए, तो कई लोग उन्हें सुनने के लिए इकट्ठे हुए, परन्तु वल्लभभाई जो अपने मित्रों के साथ उसी क्लब के एक हिस्से में ताश खेल रहे थे, उठे भी नहीं। अन्य मित्रों ने जब जाने की उत्सुकता दिखलाई तो वल्लभभाई ने उन्हें भी फटकारा—, 'इसमें क्या सुनना है। वे तो गेहूँ से कंकड़ बीनने की बात ही कहेंगे। ऐसा करने से क्या देश स्वतंत्र होने वाला है?'

इसी बीच 1917 में गोधरा में गुजरात-सभा का अधिवेशन हुआ, जिसमें वल्लभभाई भी शामिल हुए और वहाँ उन्होंने

गाँधीजी का अंग्रेजों के विरुद्ध प्रभावशाली भाषण तथा बहिष्कार का नारा सुना तो दंग रह गए। उनके मन में यह भाव आने लगा कि यह कोई मामूली स्वयंसेवक या आश्रमवासी नहीं है, वरन् यह व्यक्ति कोई बड़ा काम करना चाहता है। यहीं से वल्लभभाई गाँधीजी की ओर आकर्षित होने लगे और आगे आने वाले दो-तीन वर्षों के अंदर ही उन्होंने अपने आपको गाँधीजी के हवाले कर दिया।

1917 से 1920 तक के तीन-चार वर्षों का यदि हम अवलोकन करें तो पाएँगे कि यह काल गाँधीजी के लिए परीक्षा की घड़ी थी और वल्लभभाई जैसे उनके सहयोगियों के लिए चुनौती तथा निर्णय का समय भी था। इस बीच गुजरात में भीषण अकाल, महामारी, बाढ़, सूखा के साथ ही ब्रिटिश सरकार द्वारा कर-भार का भी जुल्म ढाया गया। अहमदाबाद, खेड़ा ओर बारडोली में एक से एक विकट घड़ियाँ उपस्थित हुईं, जिनकी प्रेरणा देने वाले यदि गाँधीजी स्वयं थे, तो उसे मूर्त रूप देने का श्रेय वल्लभभाई को है। हर परीक्षा में वल्लभभाई न केवल सफल रहे, वरन् पूरे देश को उन्होंनें अपने नेतृत्व का परिचय दिया। गाँधीजी के वे अभिन्न अंग बन गए। उनके बिना गाँधीजी गुजरात में काम करना कठिन समझते थे। वल्लभभाई जो भी काम अपने हाथ में लेते थे, उसे निर्भयता के साथ निपटाते थे। आगे खेड़ा और बारडोली तथा नागपुर के प्रसंगों से ये बातें विशेष रूप से स्पष्ट होती हैं।

उन दिनों गाँधीजी ने अपना ध्येय इन शब्दों में स्पष्ट किया था—'मैं एक ऐसे भारत के लिए काम करूँगा जिसमें गरीब से गरीब लोग यह महसूस करेंगे कि यह देश उनका है। उसके निर्माण में उनकी आवाज भी प्रभावकारी है। ऐसा भारत, जिसमें ऊँची और नीची जाति के लोग नहीं होंगे। उसमें सभी संप्रदायों के लोग पूर्ण सामंजस्य के साथ रहेंगे। ऐसे भारत में छुआछूत के

अभिशाप की गुंजाइश नहीं होगी। स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान अधिकार का उपभोग करेंगी। यही है मेरे सपनों का भारत।'

गाँधीजी और वल्लभभाई का वास्तविक संपर्क गुजरात सभा के अधिवेशन के समय गोधरा से ही हुआ था। गाँधीजी ने उन्हें सभा का एक मंत्री भी बनाया था। लेकिन यह संपर्क घनिष्टता में बदले इसकी प्रतीक्षा थी। कुछ ही दिनों बाद 1918 में गाँधीजी ने खेड़ा-सत्याग्रह की घोषणा की। इसके लिए उन्होंने पूछा—इस अवधि में मेरे साथ रहने के लिए किसी जबावदेह स्वयंसेवक की जरूरत है। वल्लभभाई ने अपना नाम लिखवाया और फिर गाँधीजी तथा वल्लभभाई तीन महीनों तक लगातार एक साथ रहे। गाँधीजी इस बीच कभी बिहार और कभी दूसरी जगहों में भी गए, लेकिन वल्लभभाई ने कमान नहीं छोड़ी। इस बीच दोनों एक दूसरे से बेहद प्रभावित हुए। वल्लभभाई को लगा कि वे जिस 'गुरु' की तलाश में थे, वह मिल गया। गाँधीजी को भी लगा कि वे जिस उप-सेनापति को खोज रहे थे वह उन्हें हासिल हो गया। गाँधीजी ने वल्लभभाई के बारे में उन दिनों जो कुछ कहा उसे भूला नहीं जा सकता है— 'मेरे साथ आने के लिए कई तैयार थे, किन्तु मन में अस्पष्ट सी एक शंका थी कि उप सेनापति किसे बनाया जाए। वल्लभभाई को प्रथम बार देखने पर मैं मन ही मन सोचने लगा कि यह अक्खड़ पुरुष मेरे क्या काम में आता है, पर मेरा यह विचार दृढ़ता में बदलता गया कि मुझे तो वल्लभभाई जैसे आदमी की बड़ी आवश्यकता है।'

यहाँ बड़ी बात यह है कि गाँधीजी की ओर से वल्लभभाई को जहाँ विश्वास और स्नेह मिला, वहीं वल्लभभाई की ओर से गाँधीजी को सेवा तथा श्रद्धा मिली। गाँधीजी और वल्लभभाई का संबंध गुरु और शिष्य का न होकर सहोदरभाई का था। दोनों की आयु में भी मात्र पाँच साल का अंतर था। दोनों गुजरात के थे। दोनों का कार्यक्षेत्र तथा भाषा संस्कार एक था। इसलिए भी दोनों

के बीच विचित्र संबंध था। गाँधीजी की बातों से अधिक उनके कार्यों ने वल्लभभाई को सबसे अधिक प्रभावित किया। यही बात वल्लभभाई के संबंध में भी कही जा सकती है।

कहाँ दोनों भाइयों—विट्ठलभाई और वल्लभभाई में यह तय था कि एकभाई राजनीति तथा समाज सेवा करेगा और दूसरा वकालत करके परिवार का भरण-पोषण करेगा और कहाँ वल्लभभाई ने इसमें जब पाँव रखा तो सब कुछ त्याग कर इसमें कूद पड़े। अपने विलायती कपड़ों की होली जलाई। वे अपने एक मात्र पुत्र डाह्याभाई को ऊँची शिक्षा के लिए विलायत भेजना चाहते थे, लेकिन उस योजना को भी उन्हें तिलांजलि देनी पड़ी।

ठीक ही कहा गया है कि गाँधीजी वह चुम्बक थे जिसमें जो कोई भी सटता था तो फिर अलग नहीं हो पाता था। यहाँ तो वल्लभभाई साक्षात 'लौह पुरुष' थे, फिर उस चुम्बक से अलग होने का सवाल ही नहीं उठता था।

गाँधीजी का व्यापक प्रभाव वल्लभभाई के जीवन पर पड़ा और खानपान से लेकर रहन-सहन में भी उन्होंने गाँधीजी को अपना लिया था। यों भी वे गाँव के किसान की वेश-भूषा में गाँधीजी के सच्चे अनुयायी के रूप में याद किए जाते हैं। गाँधीजी से उनके कई बार सैद्धान्तिक मतभेद हुए, लेकिन एक बार यदि गाँधीजी ने कह दिया तो सर झुकाकर वल्लभभाई ने उसे स्वीकार किया, जो एक सच्चे साथी या अनुयायी का कर्त्तव्य है।

गाँधीजी ने 1927 में 'नवजीवन' में एक टिप्पणी में यह लिखा था 'श्रीयुक्त वल्लभभाई पुराने सिपाही हैं और सेवा के सिवा उनका दूसरा काम भी नहीं हैं।' इस सेवा का प्रत्यक्ष और व्यक्तिगत अनुभव गाँधीजी को 1932 में हुआ, जब सरदार पटेल को यरवडा जेल में उनके साथ सोलह महीने रखा गया।

* * *

8

खेड़ा की सफलता

खेड़ा और वारडोली वल्लभभाई के जीवन के दो ऐसे मुकाम कहे जा सकते हैं जिसने इनकी जीवनधारा मोड़ दी। खेड़ा-सत्याग्रह से वल्लभभाई गाँधीजी के संपर्क में आए। वारडोली सत्याग्रह ने उनके नेतृत्व को उजागर किया। खेड़ा सत्याग्रह की सफलता और कर्मठता ने गुजरात के सशक्त नेता के रूप में वल्लभभाई को अगली पंक्ति में ला दिया।

खेड़ा और वारडोली की घटनाओं में दस साल का अंतर है। इन दस वर्षों के बीच सरदार के जीवन में और देश के मानचित्र पर अनेक घटनाएँ घटीं। जैसे रोलेट एक्ट का विरोध, असहयोग-आन्दोलन, अहमदाबाद काँग्रेस, गुजरात विद्यापीठ की स्थापना, नागपुर-सत्याग्रह, हैडिया बेरो, गाँधीजी की जेल यात्रा और रिहाई, अहमदाबाद नगरपालिका की उथल-पुथल और गुजरात में भयंकर बाढ़। उपरोक्त सभी घटनाओं की चर्चा हम अन्यत्र करेंगे। अभी हम सरदार पटेल के जीवन के दो सबसे महत्वपूर्ण अध्याय खेड़ा और वारडोली सत्याग्रह की चर्चा विस्तार से यहाँ करेंगे।

गुजरात के खेड़ा जिले में 1918 में भारी वर्षा के कारण सारी फसल बर्बाद हो गई। उस समय के कानून के अनुसार दो तिहाई फसल की बर्बादी पर आधी लगान तथा 75 प्रतिशत फसल पर

पूरी लगान माफ करने का नियम था। अतः किसानों ने सरकार के पास लगान माफी की दरखास्त दी। उस समय खेड़ा में किसानों के बीच मोहनलाल पंड्या और शंकर लाल पारीख दो नेता इसके लिए सक्रिय थे।

किसानों की हालत इतनी बदतर थी कि वे दाने-दाने को मोहताज थे लगान कहाँ से देते। सरकार ने उनकी अर्जी नामंजूर कर दी तथा सख्ती के साथ लगान वसूली करने लगी। एक तरफ भुखमरी और दूसरी ओर सरकार के जुल्म। सरकार किसानों की इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं थी कि बाढ़ के कारण पूरी फसल चौपट हो गई है। उसने एक तरफा फसल का अनुमान लगाया।

गाँधीजी उन दिनों बिहार के चम्पारन नामक स्थान में निलहे लोगों के अत्याचार से पीड़ित किसानों की लड़ाई लड़ रहे थे। इसमें उन्हें सफलता भी मिल रही थी और पूरे देश में इसकी चर्चा भी शुरू हो गई थी। गुजरात के लोगों को अपने बीच के इस अद्‌भुत व्यक्ति पर भरोसा और अभिमान होने लगा था। इसलिए खेड़ा के किसानों ने गाँधीजी को याद किया। वे बिहार से दौड़े हुए आए। गाँधीजी ने अहमदाबाद के गुजरात क्लब में इस संबंध में अपने साथियों से सलाह मशविरा किया और ब्रिटिश सरकार से न्याय के लिए लोहा लेने का निश्चय किया। उन्होंने अपने साथियों से पूछा– 'मेरे साथ खेड़ा चलने के लिए कौन तैयार हैं?' उनके प्रश्न के उत्तर में जो व्यक्ति आगे आया, वे थे वल्लभभाई पटेल। दोनों खेड़ा पहुँचे तथा वहाँ गाँव-गाँव में पैदल भ्रमण शुरू किया।

गाँधीजी पर वल्लभभाई का इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने कई जगहों पर यह ऐलान किया कि वल्लभभाई पटेल इस लड़ाई के उप-सेनापति हैं। गाँधीजी तो इस बीच देश के दूसरे हिस्सों में आते जाते भी रहे, लेकिन सरदार पटेल जब वहाँ जमें तो हिले ही

नहीं। खेड़ा के किसानों में विचित्र जागृति आ गई। गाँधीजी ने इसे सत्याग्रह का रूप दिया तथा ऐलान किया– 'पैदावार न होने पर भी सरकार दबाव डालकर लगान ले, तो यह अन्याय है। .... लगान मुलतबी कराकर एक वर्ष की बचत के लिए हजारों लोग झूठ बोलें, यह मानने जैसी बात नहीं है। सरकार ऐसा कहे तो यह हमारा अपमान है। इसलिए मेरी सलाह है कि सरकार हमारी मांग मंजूर न करे, तो हमें सरकार से कह देना चाहिए कि हम लगान नहीं देंगे और इसके लिए हमें जो कष्ट सहन करना पड़ेगा, उसे भोगने के लिए हम तैयार हैं।' इसके लिए गाँधीजी ने सब लोगों से एक प्रतिज्ञा करवाई तथा यह भी स्पष्ट किया– 'सत्याग्रही के लिए प्रतिज्ञा सबसे कीमती चीज है। इसकी रक्षा होनी ही चाहिए। प्रतिज्ञा थी कि 'हम एकजुट होकर अंतिम दम तक अन्याय के लिए संघर्ष करेंगे।'

खेड़ा सत्याग्रह के क्रम में रात दिन गाँधीजी और वल्लभभाई साथ-साथ रहे। इससे वे नजदीक आए और उन्हें एक दूसरे को समझने का मौका मिला। गाँधीजी जब करमसद की सभा में गए, तो उन्होंने सरदार के बारे में अपने विचार प्रकट किए– 'यह गाँव वल्लभभाई का है। वल्लभभाई यद्यपि अभी आग में हैं और उन्हें अच्छी तरह तपना है, परन्तु मेरा ख्याल है कि वे उसमें से कुन्दन बनकर निकलेंगे।'

खेड़ा-सत्याग्रह के बाद सही मायने में वल्लभभाई कुन्दन बनकर निकले। किसान के घर पैदा होकर वे बैरिस्टर बने थे। और वह भी शान शौकत वाले बैरिस्टर। इस खेड़ा सत्याग्रह ने पुनः उन्हें किसान बना दिया। उनका यह रूप तथा रहन-सहन जीवन भर बना रहा।

गाँधीजी और सरदार ने खेड़ा के किसानों को निर्भय बना दिया था। बिना निर्भयता के कोई बड़ी लड़ाई हो ही नहीं सकती

है। एक ओर चम्पारन, तो दूसरी ओर खेड़ा। एक ही समय दोनों किसानों के ही भाग्य की नहीं, बल्कि देश के भविष्य की लड़ाई लड़ रहे थे। पूरे देश की नज़र इनकी ओर थी। अब तक काँग्रेस द्वारा किसी भी सामाजिक-राजनीतिक संस्था के नेतृत्व में जो भी लड़ाई लड़ी जाती थी, उसमें प्रस्ताव और प्रार्थना निवेदन का ही बोलबाला था। पहली बार चम्पारन और खेड़ा की लड़ाई में व्यवहारिकता नज़र आई। जहाँ गाँवों में बिखरे तथा पिछड़े किसानों के बीच जागृति की लहर आई, जिसका श्रेय गाँधीजी को है, लेकिन इसके माध्यम से गुजरात में वल्लभभाई तथा बिहार में राजेन्द्र बाबू जैसे नेता तैयार हो रहे थे,जिनकी छाप आगे के इतिहास में है।

इस संबंध में गाँधीजी का कहना था—'खेड़ा और चम्पारन का अनुभव मुझे यह सिखाता है कि लोकनायक लोगों में जाएँगे और उनके साथ खाएँगे पीएँगे, तो दो वर्ष में ऐसे महत्वपूर्ण परिवर्तन हो सकेंगे, जिसके लिए कुछ कहा नहीं जा सकता। इस लड़ाई का गहरा अध्ययन कीजिए। खेड़ा जिले के लोगों को पहचान लीजिए। भावना और वचन से जितनी सहायता दी जा सके, दीजिए। हम अविनय पूर्वक न्याय नहीं चाहते, परन्तु सरकार के हृदय में सत्य को जागृत कर न्याय मांगते हैं। जब तक न्याय नहीं मिलेगा, ये लोग लड़ते रहेंगे।'।

ऐसे समय में सरदार ने एक पत्रिका में लिखा— 'जैसे-जैसे लड़ाई लम्बी होती जा रही है, वैसे-वैसे लोगों की परीक्षा हो रही है। अगर दुख उठाने का मौका ही नहीं आया होता, तो प्रजा को यह लाभ नहीं मिलता। सत्ता के जोर पर साहबी करने वाले अफसरों को आज गाँवों में कोई सत्कार करने वाला नहीं मिलता। कठोर से कठोर हृदय को भी प्रेम से वश में किया जा सकता है और सामने वाले को कठोरता के मुकाबले में हमारा प्रेम उतना ही सबल हो, तो हम जरूर जीत सकते हैं। सत्याग्रह की लड़ाई का

यही रहस्य है।' सरदार के इन शब्दों से साफ झलकता है कि उनके समान कठोर तथा निर्भय व्यक्ति पर गाँधीजी का प्रभाव इतना गहरा पड़ चुका था।

अंत में जीत किसानों की हुई। ब्रिटिश सरकार को झुकना पड़ा। किसानों को लगान की पूरी छूट मिली। सरदार पटेल का सही कहना था कि अधिकारी समझदार होते और उन्होंने सरकार को गलत सलाह न दी होती, तो यह लड़ाई छिड़ती ही नहीं।

गाँधीजी ने खेड़ा सत्याग्रह की सफलता का सबसे बडा श्रेय वल्लभभाई पटेल को दिया। उनका कहना था– 'वल्लभभाई मुझे न मिले होते, तो जो काम हुआ है वह हरगिज़ न होता।'

* * *

9

वारडोली के सरदार

वल्लभभाई पटेल का सबसे प्रचलित नाम 'सरदार' माना गया है, लेकिन गाँधीजी ने उन्हें 'वारडोली का सरदार' कहा था। यह वारडोली कहाँ है तथा क्यों वल्लभभाई वहाँ के सरदार कहे गए इसकी भी एक कहानी है। यह पूरी की पूरी कहानी एक ओर जहाँ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का स्मरणीय पृष्ठ है, वहीं वल्लभभाई पटेल के व्यक्तित्व को परखने की बहुत बड़ी कसौटी।

वारडोली गुजरात के सूरत जिले में एक प्रमुख तहसील है। यह गुजरात में प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए भी प्रसिद्ध है। गाँधीजी ने स्वयं इसकी सुन्दरता का वर्णन करते हुए एक जगह कहा है कि वारडोली गुजरात उद्यान की सुन्दर वाटिका का पूर्णरूपेण, प्रस्फुटित मनभावन गुलाब का पुष्प है। जहाँ तक मानव दृष्टिपात करे, वहाँ तक लहलहाते खेत-खलिहान, स्थान-स्थान पर आम्रकुंज और बाग-बगीचे इसकी शोभा को कई गुना बढ़ाते हैं। यह तहसील 20 वर्गमील में फैली हुई पूर्णरूप से उपजाऊ है और यहाँ के किसान गुजरात में अपनी समृद्धि के लिए भी प्रसिद्ध हैं।

1928 में ब्रिटिश सरकार ने यहाँ के किसानों पर 30 प्रतिशत लगानवृद्धि की घोषणा कर दी। इसके पहले गुजरात के किसानों पर बाढ़ की भयंकर चपेट पड़ चुकी थी। खेड़ा में सरकार को मुँह

की खानी पड़ी थी। लेकिन उससे सरकार ने कुछ भी सीख ग्रहण नहीं की। यहाँ के किसान जो वास्तव में लगान देने मे भी असमर्थ हो रहे थे, उनके लिए यह करवृद्धि अभिशाप बन गई।

यहाँ के किसानों ने अपनी विपदा की कहानी कई लोगों को, जिनमें उस समय के विधानसभा के सदस्य भी थे, को सुनाई। अंग्रेजों से काफी अच्छा संबंध रखने वाले उन दिनों वहाँ के दो नेता रावबहादुर भीमभाई नायक और और रावबहादुर दादूभाई देसाई जो एम०एल०ए० भी थे, ने लगान वृद्धि न करने की फरियाद सरकार से की। लेकिन सरकार के कान पर जूं भी न रेंगी।

वल्लभभाई उन दिनों गुजरात के कई हिस्सों में आई भयावह बाढ़ से पीडित लोगों की सेवा में लगे हुए थे। ऐसे समय ही जब वारडोली के पीड़ित लोगों का प्रतिनिधि मंडल उनके पास पहुँचा तो उन्होंने पहले संबंधित मामले का विवरण तैयार करने की सलाह दी। उसके बाद जब वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि खेड़ा के किसानों के समान ही वारडोली के किसानों की समस्या भी जटिल है तथा अंग्रेज सरकार अन्याय पर उतर आई है, तब वे 4 फरवरी 1928 को वारडोली पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होने सार्वजनिक सभा में लोगों से सवाल किया कि क्या वे आन्दोलन के बाद सरकार की ओर से जो दमन और हानि की वारदातें होंगी उन संकटों का सामना करने के लिए तैयार हैं? जनता ने हाथ उठाकर और चिल्लाकर यह विश्वास दिलाया कि वल्लभभाई के नेतृत्व में वे हर तरह की कुर्बानी देने और कष्ट सहने के लिए तैयार हैं। वल्लभभाई ने जब वहाँ के निवासियों की दृढ़ता देखी तब उन्होंने कर-वसूली के खिलाफ सत्याग्रह-आन्दोलन की घोषणा कर दी। उन्होंने सरकार से माँग की—'यह भू-भाग इस योग्य नहीं है कि कर में किसी प्रकार की वृद्धि की जाए। इसलिए परिस्थिति से पूर्णतया परिचित होने के लिए एक समिति गठित की जाए।'

इधर सरकार ने वल्लभभाई की इस माँग को ब्रिटिश सरकार के खिलाफ योजनाबद्ध हंगामा करना माना। बदले में उसने किसानों को तरह-तरह से तंग करना भी शुरू कर दिया। इधर वल्लभभाई ने किसानों को साफ-साफ कहा—सरकार निर्दयता के साथ हम पर अन्याय एवं अत्याचार करना चाहेगी और साथ ही हमें बुरी तरह अपमानित भी करेगी। ऐसे समय में सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न स्वाभिमान का है। अपमानित होकर जीने की अपेक्षा सम्मान के साथ मरना मैं अधिक पसंद करता हूँ।

वल्लभभाई ने सत्याग्रह की शुरुआत बारडोली से शुरू की, लेकिन उसका विस्तार बांकानेर, वराड़, वड, कुत्मा, बाड़ोल, कड़ोद आदि हिस्सों में भी किया। इधर सरकार ने उन्हें 'बाहरी आदमी' कहते हुए किसानों को गुमराह करने की चेष्टा की। इस पर वल्लभभाई ने सिंह की तरह दहाड़ते हुए बुलन्द आवाज में लोगों को ललकारा—'सरकार अपने आपको मदोन्मत हाथी और हमें तुच्छ मच्छर की उपमा देती है। लेकिन यह शायद एक बात भूल गई है कि यदि मच्छर उन्मत्त हाथी के कान में घुस जाए तो उसके 'राम बोलते' देर नहीं लगती।'

ब्रिटिश सरकार इस विद्रोह को किसी भी रूप में दबाना चाहती थी। इसके लिए उसने तरह-तरह के प्रलोभन दिए, डराया-धमकाया लेकिन लोग टस से मस नहीं हुए। अंत में लोगों की जमीन-जायदाद नीलाम होने लगी। वल्लभभाई ने ऐसी मोर्चाबंदी की कि खरीदने वाले आएँ ही नहीं। बहुत प्रयास के बाद बाहर से एक पारसीभाई को सरकार ले भी आई, तो इसके फलस्वरूप उसके कस्बे में सबों ने उसका बायकाट कर दिया। सत्याग्रह आन्दोलन में सभी जाति और धर्म के लोग कंधे से कंधा मिलाकर जुट गए। अजीब दृश्य पैदा हो गया।

साबरमती आश्रम, अहमदाबाद में बैठकर गाँधीजी बारडोली-सत्याग्रह का संचालन कर रहे थे, लेकिन उन्होंने वहाँ

का सारा संचालन तथा कार्यक्रम वल्लभभाई के जिम्मे ही छोड़ दिया था। उनका कहना था कि वल्लभभाई जब भी मेरी जरूरत महसूस करेंगे मैं वहाँ जाने को तैयार हूँ। गाँधीजी ने खेड़ा-सत्याग्रह के समय ही यह स्पष्ट कर दिया था कि पूरे देश में वह स्वयं दौरा करते रहेंगे और आन्दोलन की रूपरेखा तय करते रहेंगे। लेकिन गुजरात में जब वल्लभभाई हैं ही तब वे वहाँ से निश्चिन्त हैं। इसीलिए उन्होंने वल्लभभाई को 'उप-सेनापति' का दर्जा भी दे दिया था।

वारडोली में वल्लभभाई ने किसानों का संगठन किया और अंग्रेजी सरकार का बहिष्कार। यह उस समय के गुजरात के एक बड़े नेता और बम्बई हाईकोर्ट के सुप्रसिद्ध वकील श्री के० एम० मुंशी के इस पत्र से पता चलता है, जो उन्होंने गवर्नर को लिखा था– 'वारडोली में ८0 हजार स्त्री-पुरुष और बच्चे सुसंगठित विरोध करने की अटल टेक लेकर बैठे हैं। आपके कुर्की अफसरों को नाई को ढूंढने के लिए भी मीलों तक भटकना पड़ता है। आपके एक अफसर की मोटर कीचड मे फंस गई थी। वह अगर आपके कहे अनुसार लोगों पर गुजर करने वाले आन्दोलनकारी श्री वल्लभभाई न होते, तो जहाँ की तहाँ पड़ी रहती। श्री गार्ड को, जिन्हें हजारों की कीमत की जमीन पानी के भाव बेच दी गई है, अपने घर के लिए झाड़ू लगाने वाला आदमी भी नहीं मिलता। कलेक्टर को भी वल्लभभाई की आज्ञा के बिना स्टेशन पर एक वाहन भी नहीं मिलता। मैंने जिन थोडे से गाँवों को देखा, उनमें एक भी स्त्री या पुरुष मुझे ऐसे न मिले जो अपने इस किए हुए निर्णय पर पछताता हो या जो अपने स्वीकार किए हुए धर्ममार्ग से डगमगा रहा हो। सरकारी रिपोर्टों में यह कहा जाता है कि यह आन्दोलन है और लोगों पर उनकी इच्छा के विरुद्ध लादा गया है। नरम से नरम शब्दों मे कहूँ तो यह बात बिल्कुल बेबुनियाद है। लोग आपकी सरकार के लोगों के डराने, धमकाने और थर्रा देने वाले प्रयत्नों की हँसी उड़ाते हैं।'

जो बातें स्पष्ट शब्दों में श्री के एम. मुंशी ने लिखी या महसूस कीं, वैसे ही विचार उस समय के महान व्यक्तियों के थे, जिनमें सर्वश्री पं. मदनमोहन मालवीय, मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपत राय आदि प्रमुख थे। गाँधीजी की ओर से महादेवभाई देसाई तथा स्वामी आनन्द का एक पांव अहमदाबाद तो दूसरा पांव वारडोली में ही रहता था। उस समय के गुजरात के सुप्रसिद्ध राजनीतिक और रचनात्मक कार्यकर्ताओं में सर्वश्री जमनालाल बजाज, पं. हृदयनाथ कुंजरू, पं. रविशंकर महाराज, ठक्कर बापा आदि वारडोली में बैठकर वल्लभभाई का साथ दे रहे थे। पूरा देश इसके प्रति जागृत था। कांग्रेस की पूरी ताकत इसमें जुटी हुई थी। गाँधीजी स्वयं 'यंग इंडिया' के द्वारा यहाँ की हालत की जानकारी पूरी दुनिया को दे रहे थे।

इसी बीच पूरे देश में 12 जून 1928 को वारडोली-दिवस के रूप में मनाया गया। वारडोली के लोगों ने चौबीस घंटों का उपवास रखा। पूरे देश में उस दिन जनसभाएं की गई और धन संग्रह किया गया, जिससे यहाँ के पीडित भाइयों की मदद की जा सके। हाथों–हाथ दो लाख रुपये एक दिन में इकट्ठे किए गए। एक ओर सरकार का जुल्म बढ़ रहा था, तो दूसरी ओर वारडोली के किसानों और पीड़ितों का संकल्प दृढ़ हो रहा था। जबतक सरकार उनकी माँग मान नहीं लेती, कोई भी एक पैसा कर नहीं देगा। वल्लभभाई की चर्चा गाँवों, कस्बों और गुजरात की गलियों से होकर पूरे देश में एक बहादुर सिपाही के रूप में फैल गई थी। उनका संगठन, लोगों के विश्वास को लेकर चलने की क्षमता और स्वयं की दृढ़ता विचित्र थी।

अंत में ब्रिटिश सरकार को झुकना पड़ा। उसने वल्लभभाई से जानना चाहा कि वे किन शर्तों पर समझौता करने के लिए

तैयार हैं। वल्लभभाई ने गर्वनर के सामने तत्काल 5 शर्तें रख दीं–

1. सत्याग्रही बंदियों को मुक्त कर दिया जाए।
2. नीलाम की हुई जमीन मालिक को पुन: लौटाई जाए।
3. जो भी संपत्ति नाम मात्र मूल्य पर नीलाम की गई हो उसे मूल मालिक को दिलाया जाए।
4. सत्याग्रह के सिलसिले में जिन कर्मचारियों की नौकरी चली गई हो, उन्हें पुन: काम पर लिया जाए।
5. जाँच समिति गठित की जाए।

कुछ लोगों ने वल्लभभाई और सरकार के बीच इसके लिए प्रयास भी किया और जिस दिन 2 अगस्त 1928 को गाँधीजी सूरत स्टेशन पर बारडोली की राह में पहुंचे, उसी दिन सरकार ने समझौते पर अमल करने की घोषणा भी कर दी। इस प्रकार वल्लभभाई का नाम प्रान्त की सीमा पार कर पूरे देश में फैल गया। पूरे देश में इस जीत की खुशी मे 'बारडोली विजय दिवस' मनाया गया।

गाँधीजी ने 'नवजीवन' के अग्रलेख में वल्लभभाई को बारडोली का सरदार कहकर पुकारा, जिसे पूरे देश ने 'सरदार' के रूप में स्वीकार कर लिया। उसके बाद से ही उनका नाम वल्लभभाई नाम से कम, 'सरदार' के नाम से ही अधिक जाना जाने लगा।

गाँधीजी का इस संबंध में बारडोली के लोगों के नाम संदेश था– 'जिस सरदार के सेनापतित्व में आपने इस प्रतिज्ञा का इतना सुंदर पालन किया उसी के सेनापतित्व में आप यह भी करें। ऐसा स्वार्थ त्यागी सरदार आपको और नहीं मिलेगा। यह मेरे सगेभाई के समान है।'

वारडोली सत्याग्रह की शुरुआत से लेकर वारडोली-विजय तक की घटनाओं से सरदार पटेल की दृढ़ता और राजनीतिक सूझ-बूझ दोनों का भरपूर परिचय मिलता है। आजादी मिलने से वर्षों पहले वे 'वारडोली के सरदार' बने थे, जिसे असरदार रूप में उनके हर काम और अभियान में हम देखते हैं। वही क्रम आजादी के बाद भी कायम रहा। वे सही मानों में सरदार थे।

* * *

10

पहली गिरफ्तारी और जेल यात्राएँ

स्वतंत्रता सैनिकों तथा सत्याग्रहियों के लिए जेल जाना एक आम बात थी। उस जमाने में जेल-यात्रा को लोग 'ससुराल यात्रा' कहा करते थे। कुछ लोगों का यह भी कहना था कि भगवान श्रीकृष्ण का जन्म जेल में हुआ था, अतः आजादी भी जेल में ही जन्म लेगी। बात भी सही थी। जिन लोगों ने जेलों में जाकर यातनाएँ सहीं, अपने को परिवार-घरबार से अलग रखा, तन्हाई का जीवन जिया उनके कारण ही आजादी आई। इस रूप में स्वाधीनता का जन्म जेल के सीकचों में ही हुआ।

वल्लभभाई पटेल प्रायः कहा करते थे कि मेरी हाथ की रेखाओं में जेल जाना नहीं लिखा है। लेकिन गाँधीजी ने जब नमक सत्याग्रह का आह्वान किया, तो उस लड़ाई का आरंभ सरदार पटेल की गिरफ्तारी से हुआ। गाँधीजी ने इसके लिए बारडोली तहसील के दांडी नामक समुद्र तट को चुना। दांडी समुद्र किनारे पर एक खूबसूरत स्थल है। बारडोली सत्याग्रह की सफलता के बाद सरदार पटेल वहाँ के बेताज के बादशाह थे। जनता भी सत्याग्रह का मर्म समझ गई थी। बारडोली-विजय से वहाँ की जनता का उत्साह भी बढ़ा हुआ था। अतः सरदार पटेल ने जब

दांडी नमक सत्याग्रह की सूचना लोगों को दी तो वहाँ के लोग इसकी तैयारी करने लगे और बापू की राह देखने लगे। बापू ने दांडी के लिए अहमदाबाद के साबरमती आश्रम से 12 मार्च 1930 को कूच किया, उसके पाँच दिन पहले ही सरकार ने वल्लभभाई को गिरफ्तार कर लिया। वे बोरसद के पास रास नामक गाँव में भाषण देने पहुंचे ही थे कि सरकार ने उन्हें नजरबंद कर लिया और तीन महीने की सख्त कैद के साथ ही 500 रु. जुर्माने की भी सजा सुनाई। वे जब साबरमती जेल जा रहे थे तो रास्ते में साबरमती आश्रम के पास रुके और गाँधीजी तथा अन्य आश्रमवासियों से मिले।

इधर गाँधीजी ने सरदार की जेल-यात्रा के संबंध में 'हिन्दी नवजीवन' में जो टिप्पणी लिखी, उसने गुजरातवासियों को उनकी राह पर चलने के लिए और भी प्रोत्साहित किया। गुजरात, गाँधीजी, जेल-यात्रा और सरकारी नीति इन सबों पर गाँधीजी की टिप्पणी से प्रकाश पड़ता है– 'सरदार वल्लभभाई हँसी में कहा करते थे कि उनके हाथ की रेखाओं में जेल की रेखा नहीं है। उन लोगों के लिए जेल है ही नहीं, जिनके लिए जेल महल के समान है और जो जेल और महल में कोई भेद नहीं समझते। जहाँ आज सरदार विराजे हैं, वहाँ हम सबको जाना है। पर बिना योग्यता प्राप्त किए जेल नहीं मिलती। सरदार वल्लभभाई की अमूल्य सेवाओं के हम पात्र थे या नहीं, इसे प्रमाणित करने का अवसर अब आ गया है। उन्हें गुजरात से आशा क्यों न हो? उन्होंने मजदूरों की सेवा में कौन कमी रखी है? डाकवालों और रेलवे के नौकरों ने उनके पास बैठकर स्वराज्य का पाठ पढ़ा है। अहमदाबाद का ऐसा कौन नागरिक है जो नहीं जानता कि उन्होंने अपना सर्वस्व होमकर शहर की सेवा की है। शहर में जब भयंकर महामारी फैली थी उन दिनों गरीबों की सेवा का इंतजाम करने वाला कौन था? वल्लभभाई। अकाल पड़ने पर

अकालपीडितों की मदद के लिए दौड पडने वाला कौन था? वल्लभभाई पटेल। गुजरात में ऐतिहासिक बाढ़ आई, लाखों लोग घर-बार विहीन हो गए। खेतों की फसल बह गई। उस समय सारे गुजरात का संकट टालने के लिए सैकड़ों स्वयं सेवकों को तैयार करने वाला, लोगों के लिए एक करोड़ रुपया सरकार के खजाने से निकलवाने वाला कौन था? वल्लभभाई पटेल ही। और वह भी वल्लभभाई ही थे, जिन्हें बारडोली की जीत के लिए ऋणी जनता ने 'सरदार' कहकर पुकारा और जो संपूर्ण स्वराज्य की आखिरी लडाई के लिए जनता को तैयार कर रहे थे। वल्लभभाई तो अपने कर्तव्य का पालन करते हुए जेल पहुँच गए। अब हमें क्या करना चाहिए? इस सवाल का एक जबाव तो साफ ही है। हम हिम्मत न हारें; उलटे हममें से हर एक दुगुनी दृढ़ता और दुगुनी हिम्मत के साथ सविनय संग के लिए तैयार हो जाए और जेल की, या मौत मिले तो मौत की राह पकड़ ले। सरदार के जाने के बाद अब रहनुमा कौन होगा? इस तरह का नामर्दी से भरा हुआ सवाल कोई अपने मन में न उठने दे।'

गाँधीजी के उपरोक्त कथन से सरदार पटेल के संबंध में उन सभी बातों की जानकारी हो जाती है, जिसके वे प्रतीक रहे हैं। किसी और के लिए गाँधीजी ने इतनी बाते कहीं हों, यह देखने मे नहीं आता। गाँधीजी के कथनानुसार बहादुर आदमी ही जेल की यात्रा करता है और चुनौती का सामना करता है, जो वल्लभभाई कर रहे थे।

सरदार स्वयं कानून के बड़े जानकारों में से थे। अत: उन पर जो भी इल्जाम सरकार लगाती उसकी वह धज्जियाँ उड़ा सकते थे। लेकिन उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया और अदालत मे बुलाकर जब जिला-मजिस्ट्रेट ने उनसे पूछा कि आप पर लगाया गया जुर्म आपको मान्य है? तो एक असहयोगी सत्याग्रही के समान उन्होंने बस इतना ही कहा जी हाँ, मुझे मान्य है।

सरदार उस समय तक सिगरेट पीने के आदी थे। लेकिन जब वे जेल के फाटक के पास पहुंचे तो उन्होंने अपनी जेब से पाकिट निकालकर वहीं रख दिए और व्रत लिया कि अबसे सिगरेट नहीं पिएंगे और फिर कभी नहीं पी।

1930 से उनके जेल जाने का जो सिलसिला शुरू हुआ, वह अनवरत साल-छ महीने तक चलता रहा। जैसा कहा गया है। पहली जेल यात्रा 7 मार्च 1930 को हुई और वे 26 जून 1930 को रिहा किए गए। उसके बाद उसी साल 31 जुलाई को वे पुनः नजरबंद हुए और यरवदा जेल भेज दिए गए। 1932-33 में वे पुनः सोलह महीनों के लिए यरवदा जेल में रहे। इस बीच गाँधीजी भी वहीं थे। दोनों में गाढ़ी मैत्री तथा एक-दूसरे को नजदीक से समझने का मौका वहीं मिला। इस बीच सरदार की माताजी का देहावसान हो गया और वे उनके अंतिम दर्शन भी न कर सके।

1934 में सरदार पटेल जेल से बाहर आए और तीन-चार वर्षों तक बाहर रहकर उन्होंने कांग्रेस को मजबूत बनाने तथा ब्रिटिश साम्राज्य को उखाड़ फेंकने का कार्य सुचारू ढंग से किया। इसी काल में विभिन्न राज्यों में कांग्रेस के नेतृत्व में अंतरिम सरकारों का गठन भी हुआ। महाराष्ट्र-गुजरात में सरदार पटेल के परिश्रम से ही लोकप्रिय सरकार का गठन हुआ। 1940 और 1941 में वे पुनः जेल में बंद कर दिए गए। वे जब छूटकर आए तो गाँधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस ने 'करो या मरो' और 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पारित किया। इस प्रस्ताव को 8 अगस्त 1942 की रात में पं. जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस महासमिति के सामने बम्बई में रखा, जिसका समर्थन ओजस्वी रूप से सरदार पटेल ने किया। 9 अगस्त, 42 का सवेरा भी वे तथा कांग्रेस के अन्य नेतागण नहीं देख पाए थे कि सभी जेल की सीकचों में बंद कर दिए गए। सरदार पटेल गाँधीजी के साथ ही अहमदनगर किले में

नजरबंद रहे, जहाँ से सभी नेताओं के साथ सरदार 1945 में मुक्त किए गए। इस बीच जेल में वे भयानक रूप से बीमार रहे। उनका वजन जेल की अनियमितताओं से बीस पौंड कम हो गया। जेल में ही उनके अभिन्न मित्र महादेव देसाई की मृत्यु हुई। तथा माता कस्तूरबा के निधन के समय भी वे जेल में गाँधीजी के पास ही थे।

अपने अंतिम कारावास के समय जब वे अहमदनगर किले में थे तो आँतों के पुराने रोग ने उन्हें जर्जर बना दिया। न तो वे किसी अच्छे चिकित्सक से सलाह ले सकते थे न ही स्वभाव के अनुसार अपनी पीड़ा को व्यक्त ही कर सकते थे। लेकिन इसके कारण अनेक रातें जागकर उन्होंने बिताईं सरकार सशर्त उन्हें रिहा कर सकती थी, लेकिन मौत को जिन्दगी से बेहतर समझने वाले सरदार ब्रिटिश सरकार से अपने लिए याचना करें, यह संभव नहीं था।

अपने कारावास के दिनों में उन्होंने अपनी डायरी लिखी, संस्कृत का अध्ययन किया, धार्मिक ग्रंथों का पाठ किया और चिन्तन-मनन में भी समय बिताया।

* * *

11

पारिवारिक जीवन

निश्चय ही किसी व्यक्ति के संबंध में विचार करते समय उसके पारिवारिक जीवन के संबंध में भी विशद चर्चा होनी चाहिए। सरदार पटेल के बचपन से लेकर उनके विस्तृत कार्यकलाप तक हम जरूर पहुँच गए, लेकिन यह बात शायद अधूरी है कि उनका पारिवारिक जीवन किस भाँति आगे बढ़ा। यह कहा जा चुका है कि उनके पिता और माता दोनों धार्मिक थे इसका प्रभाव प्रारंभ से ही सरदार पटेल पर पड़ा। पिता का अधिकांश समय स्वामीनारायण मंदिर में ही बीतता था। बल्लभभाई उस तरह के धार्मिक न होकर निष्ठावान, चरित्रवान और कर्तव्यनिष्ठ जरूर थे। उनके परिवार में भक्ति, अनुशासन, श्रद्धा, सत्य आचरण सब कुछ विद्यमान था। तभी ये सारे गुण वल्लभभाई में शुरू से दिखाई देते हैं।

पत्नी की असमय मृत्यु के बाद दोनों बच्चों का बोझ उनके ऊपर आ गया था। लोगों ने कोशिश की कि वल्लभभाई दूसरी शादी कर लें, अभी इनकी आयु उसके उपयुक्त है, लेकिन वल्लभभाई ने इसे हंसकर टाल दिया। विट्ठलभाई जब बैरिस्टरी पढ़ने विलायत गए, तो उनके परिवार का बोझ भी वल्लभभाई ने ही उठाया था। भाभी को अपने यहाँ लाकर रखा। यही बात उस समय हुई जब इनकी पत्नी की मृत्यु हुई और ये विलायत गए तो

दोनों बच्चे अपने चाचा के पास रहकर शिक्षा ग्रहण करते रहे।

सरदार पटेल जब पूर्णरूपेण राजनीति में आ गए तो फिर उन्हें कहाँ फुर्सत कि परिवार और बच्चों को देखें। इनके लिए तो गुजरात का पूरा समाज ही परिवार था। अतः डाह्याभाई और मणिबेन की शिक्षा और रहने-सहने की व्यवस्था सब कुछ अस्त-व्यस्त हो गई। आजादी की लड़ाई में संलग्न अधिकांश लोगों के परिवारों की यही कहानी रही है। यही स्थिति सरदार पटेल के साथ भी रही होगी। तभी तो वे चाहकर भी अपने बेटे डाह्याभाई को ऊँची शिक्षा के लिए विलायत नहीं भेज सके, जिसका दुःख सदा डाह्याभाई को रहा। दूसरी ओर मणिबेन ने जब देखा कि उनके पिता की देखभाल करने वाला कोई पारिवारिक सदस्य नहीं है, तो उन्होंने अविवाहित रहकर उनकी सेवा में ही अपना संपूर्ण जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया। वह आजन्म पिता के साथ छाया के समान रहकर उनकी देखभाल करती रहीं। जिन लोगों ने नजदीक से मणिबेन को देखा और जाना है उनका कहना है कि जिस भाँति अपने को समर्पित कर और अनेक लोगों के कोप का भाजन बन कर वह सरदार की सेवा और आराम की चिन्ता रखती थीं उसीने सरदार को संभाले रखा। वरना लम्बे कारावास और अनियमितता के कारण उनका स्वास्थ्य बिलकुल खराब हो गया होता।

यहाँ देश के दोनों बड़े नेताओं सरदार पटेल और पं. जवाहरलाल नेहरू के जीवन में काफी समानता हमें दिखाई देती है। दोनों के जीवन का अधिकांश भाग एकाकीपन में बीता, जबकि दोनों की पत्नियों का देहावसान कम आयु में ही हुआ। इसके बाद दोनों की देखभाल उनकी पुत्रियों ने की। दोनों की पुत्रियाँ काफी सक्षम तथा समझदार थीं और पिता के पास रहकर दोनों ने पर्याप्त अनुभव प्राप्त किए। इन्दिराजी और मणिबेन दोनों हमारे देश की ऐसी महिलाओं में गिनी जाती हैं, जिनसे आगे

आने वाली पीढ़ियाँ प्रेरणा ग्रहण करेंगी। आजादी के पहले की अस्त-व्यस्त परिस्थितियों में जैसी देख-भाल इन दोनों ने अपने पिताओं की, वह केवल व्यक्तिगत कर्तव्य मात्र न होकर राष्ट्र के लिए ऋण स्वरूप है।

वल्लभभाई का सबसे बड़ा गुण यह था कि राजनीति में भी कार्यकर्ताओं के साथ उनका संबंध पारिवारिक बन जाता था। यही कारण था कि गुजरात का हर घर, हर गाँव उनका परिवार बन गया था। उन्होंने अपने कार्यक्षेत्र का विस्तार पूरे देश में न करके गुजरात में ही किया और जिस भाँति अपने संगठन और कर्मठ संकल्प का परिचय दिया, उसी ने पूरे देश में उनका नाम उजागर कर दिया।

'हिन्द के सरदार' के लेखक श्री रावजीभाई पटेल ने बहुत आत्मीयता और श्रद्धा के साथ सरदार के इन गुणों का उल्लेख किया है– 'वल्लभभाई अहमदाबाद में बैरिस्टरी करते हुए काफी पैसा कमाते थे। विट्ठलभाई में भी पैसा कमाने की बहुत बड़ी शक्ति थी, लेकिन वह तो सेवाकार्य में जुट गए थे। इसलिए विट्ठलभाई के बम्बई के खर्च का बोझ भी वल्लभभाई के सिर आ पड़ा। विट्ठलभाई जब कभी घर आते तब वल्लभभाई दिल खोलकर उनका स्वागत करते थे और जब वे बम्बई लौटते तब बम्बई के खर्च के लिए उनकी जेब नोटों से भरकर उन्हें विदा करते थे। न तो वल्लभभाई एक शब्द बोलते, न बड़े भाई से कुछ पूछते और न यह कहते कि इतनी रकम आपकी जेब में रखी है। उनका पारिवारिक जीवन ऐसी आत्मीयता से ओतप्रोत था।'

सच में पारिवारिक जीवन की मधुरता और सुख-शांति के ऊपर ही किसी व्यक्ति के विकास का बीज छिपा होता है। जहाँ से शांति चली जाती है, वहाँ अच्छी से अच्छी प्रतिभा का विकास रुक जाता है। उस क्रम में रावजीभाई, जो केवल लेखक ही नहीं सरदार पटेल के पारिवारिक मित्र भी हैं, लिखते हैं– 'यह तो सगे

भाई के साथ के संबंध की बात हुई। परंतु अपने साथ काम करने वाले लोगों के साथ भी वल्लभभाई जीवन भर ऐसी ही पारिवारिक भावना से रहे। अपने साथियों को उन्होंने सदा परिवार के सदस्यों की तरह ही अपनाया। अहमदाबाद में वे लम्बे समय तक रहे। जिस मकान में वल्लभभाई रहते थे वह केवल एक आसरे जैसा था। अहमदाबाद के साथी कार्यकर्ताओं तथा मित्रों के साथ उनका ऐसा गहरा पारिवारिक संबंध हो गया था कि उन्हें किसी के साथ अलगाव या संकोच जैसा लगता ही नहीं था। वल्लभभाई वकालत करते थे, लेकिन केवल वकीलों के साथ ही उनका पारिवारिक संबंध नहीं था। उनके भीतर हृदय की जो सरलता और शुद्धता थी, जो निर्भयता थी और जो कार्यशक्ति थी उसका पोषण करने वाले लोगों को उन्होंने अपना कुटुम्बीजन बना लिया था।'

गाँधीयुग की एक सबसे बड़ी देन यह भी मानी जाएगी कि उस जमाने में जो भी नेता राष्ट्रीय मंच पर आए, वे परिवार के समान एक-दूसरे से जुड़े हुए थे। इसका .एक कारण यह भी था कि संघर्ष में, जेल के एकाकीपन में, अभाव में वे एक दूसरे से पारिवारिक रूप से जुड़ते थे। आजादी के बाद इसका अभाव हो गया।

राजनीतिक और सामाजिक जीवन की सबसे बड़ी बात है लोगों का विश्वास प्राप्त करना। सरदार पटेल को गुजरात की आमजनता का तथा काँग्रेस के अधिकांश कार्यकर्ताओं का परिवार के समान विश्वास प्राप्त था। यही उनकी सफलता का रहस्य था।

1975 में सरदार पटेल की जन्म शताब्दी मनाई गई। उस समय उनके पत्रों का विशाल संग्रह कई भागों में प्रकाशित हुआ। उन पत्रों में उनकी निश्छलता तथा पारिवारिकता का भाव छलकता हुआ दिखलाई देता है। जो व्यक्ति व्यावहारिक होगा,

वही लोगों के अंदर विश्वास पैदा कर सकेगा। सरदार की एक प्रमुख विशेषता उनका व्यावहारिक होना भी है।

गाँधीजी के संपर्क में ज्यों-ज्यों सरदार पटेल आते गए त्यों-त्यों दोनों का संबंध-संपर्क राजनीतिक न रहकर पारिवारिक हो गया। यह पारिवारिक होने का गुण गुजरात की मिट्टी की विशेषता है। ऊपर से कठोर दिखाई देने वाले सरदार पटेल अंदर से फूलों के समान कोमल और मधुर थे, इसीलिए उनकी याद के साथ ही भवभूति का यह श्लोक भी याद आता है—

'वज्रादपि कठोराणि मृदूली कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चैतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ।।'

सरदार वल्लभभाई पटेल के पारिवारिक जीवन की सबसे बड़ी खूबी यही कही जाएगी कि उन्होंने मात्र अपने बेटे और बेटी को परिवार की इकाई न मानकर पूरे राष्ट्र को अपना परिवार माना। इसीलिए आज राष्ट्र भी उन्हें इसी रूप में ग्रहण करता है।

* * *

12

काँग्रेस अध्यक्ष के रूप में

आजादी के पहले काँग्रेस का अध्यक्षपद देश का सबसे बड़ा सम्मानजनक पद था। जो काँग्रेस अध्यक्ष होता था, उसे जनता 'राष्ट्रपति' के रूप में ग्रहण करती थी। यह उस व्यक्ति का बहुत बड़ा सम्मान था। 1921 के बाद काँग्रेस के जो भी अध्यक्ष अथवा राष्ट्रपति हुए वे सभी राष्ट्रपिता यानी गाँधीजी की मर्जी के अनुसार ही हुए।

1928 में काँग्रेस अध्यक्ष के रूप में पं. मोतीलाल नेहरू का चुनाव हुआ। उसी साल काँग्रेस ने आजाद भारत के लिए अपना संविधान स्वीकृत किया, जिसे बहुत परिश्रम से उस समय के न्यायविदों ने तैयार किया था। मोतीलाल जी ही उस समिति के अध्यक्ष थे। उसके बाद 1929 में काँग्रेस अध्यक्ष के लिए सरदार वल्लभभाई पटेल का नाम सामने आया, लेकिन गाँधीजी की पहल पर पं. जवाहरलाल नेहरू अध्यक्ष चुने गए। उन्होंने अपने पिता पं. मोतीलाल नेहरू से पदभार ग्रहण किया उनके सभापतित्व में ही काँग्रेस ने लाहौर में रावी के तट पर पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पारित किया।

1931 में सरदार वल्लभभाई पटेल काँग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। इसी साल गाँधी-इर्विन पैक्ट हुआ। इसी साल मोतीलाल नेहरू का देहावसान हुआ। इसी साल चन्द्रशेखर आजाद गोली के

शिकार हुए। इसी साल भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव फाँसी के तख्ते पर झूले। इसी साल गाँधीजी कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि की हैसियत से द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने लंदन गए। इसी साल कराँची में कांग्रेस का वह ऐतिहासिक अधिवेशन हुआ, जिसकी अध्यक्षता का भार वल्लभभाई पटेल के कंधों पर पड़ा। सरदार पटेल की आयु उस समय 58 वर्ष थी और पूरा देश उनकी कर्मठता, दृढ़ता और संगठन शक्ति से परिचित हो चुका था।

सरदार पटेल का व्यक्तित्व बालगंगाधर तिलक की याद दिलाता था। वही ओज और वही दृढ़ता। तभी तो उनके एक जीवनी लेखक श्री रंजन परमार ने 'बारडोली के सरदार' में उनका चित्रण इस प्रकार किया है–। 'वल्लभभाई जिस प्रकार शौर्य के प्रतीक थे उसी प्रकार चातुर्य के धनी थे। स्वतंत्रता संग्राम में प्रतिदिन रत महारथी, वैसे ही स्वराज्य के सूत्र संचालन में कुशल सारथी। वे जितने प्रभावी और सफल सेनापति थे, उतने ही दक्ष शासक। युद्धनीति और राजनीति तो उनकी चेरी थी और वे उनके एकमेव स्वामी अधिनायक। सामान्य जनता की भावनाओं को प्रक्षुब्ध कर आन्दोलन का वातावरण निर्माण करंने में वे जिस हद तक पारंगत थे, उतने ही निपुण।'

ऐसे ही सरदार पटेल जब काँग्रेस अध्यक्ष के पद पर आसीन हुए तो उन्होंने मार्मिक शब्दों में अपील की– 'अब मैं 58 का हो गया हूँ और महात्माजी 63 के। स्वराज्य प्राप्ति की अधीरता और जल्दी तो भला हम वृद्धों को होनी चाहिए या मेरे समक्ष बैठे असंख्य युवकों को। हमारी मृत्यु के पूर्व भारतवर्ष–मातृभूमि को स्वाधीन राष्ट्र के रूप में देखने की तमन्ना है। अतः किसी बात का असंतोष, रोष या निराशा को तिलाँजलि देकर हमें भविष्य की योजनाएँ बनाने में लग जाना चाहिए। मद्य-निषेध, खादी-प्रचार

और आत्म-शुद्धि सदृश्य कई विधायक कार्य हमारे आगे मुँह बाए बड़े हैं। इनमें से ही नई शक्ति और नई स्फूर्ति मिलेगी।'

ध्यान देने की बात यह है कि सरदार भी इस बात को समझते थे कि जब तक नई पीढी आगे नहीं बढ़ेगी देश का नवनिर्माण नहीं होगा। यह भी वह बखूबी जानते थे कि मात्र राजनीतिक कार्यक्रमों और आन्दोलनों से ही देश का नक्शा नहीं बदलता है, वरन् इसके लिए सामाजिक और रचनात्मक कार्य भी आवश्यक हैं। तभी उन्होंने जहाँ एक और मद्य-निषेध की बात कही, वहीं खादी-प्रचार की।

काँग्रेस अध्यक्ष को भले ही उन दिनों 'राष्ट्रपति' कहा जाता रहा हो, लेकिन वह काँटों का ताज था। 1928 से 1931 के बीच सरदार चार बार जेल-यात्रा कर चुके थे। उस समय के स्वतंत्रता सेनानियों का एक पाँव बाहर रहता था तो दूसरा पाँव जेल के अंदर। ऐसे में उनका घर-परिवार सब छिन्न-भिन्न हो जाता था।

सरदार पटेल ने जवाहरलाल जी से काँग्रेस अध्यक्ष का पद भार ग्रहण किया। उस समय गाँधीजी के दाहिने और बाएँ हाथ के रूप में नेहरू और पटेल की जोड़ी प्रसिद्ध थी, जो आजादी के बाद तक चली। अतः स्वाभाविक ही था कि पूरे देश का ध्यान इस जोड़ी पर टिका हो। जनमत को जागृत करने की अद्भुत शक्ति जवाहरलाल में थी, तो उसे संगठित करके ले चलने की अपूर्व क्षमता सरदार में। क्षमा, उदारता, उतावलापन, आत्मीयता, जोश, रसिकता ये सभी गुण जवाहरलाल जी में विद्यमान थे, वहीं सरदार में दृढ-निश्चय, अद्भुत संकल्प-शक्ति और असीम साहस-वृत्ति कूट-कूट कर भरी हुई थी। दोनों की राष्ट्रभक्ति, गाँधी-निष्ठा, अँग्रेजों से टक्कर लेने की क्षमता, नेतृत्व का गुण और जनसेवा समान स्तर की थी।

बारडोली-सत्याग्रह के बाद से ही देश के कोने-कोने से सरदार पटेल की बुलाहट आ रही थी। हालांकि उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र गुजरात ही रखा, लेकिन 1928, 1929 और 1930 में जब भी उन्हें जेल से मुक्ति मिली वे दक्षिण और उत्तर भारत के अनेक हिस्सों का दौरा करते रहे।

कराँची-काँग्रेस, जिसके अध्यक्ष वल्लभभाई थे तपती गर्मी के बावजूद भी भारी सफलता के साथ संपन्न हुआ। 500 महिला कार्यकर्ता तथा 3000 स्वयंसेवकों ने तपती रेत में भी अपने अध्यक्ष के समान ही कर्मठता का परिचय दिया। इस अधिवेशन में काँग्रेस अध्यक्ष वल्लभभाई पटेल के सामने तीन बड़ी चुनौतियाँ थी। एक गाँधी-इर्विन पैक्ट पर महासमिति की मुहर लगवाना। दूसरी, भगत सिह, राजगुरु और सुखदेव की फाँसी के कारण दुखी और क्रोधित युवा-वर्ग को शांत करवाना। तीसरी, द्वितीय गोलमेज-सम्मेलन में काँग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में गाँधीजी को भेजने का सर्वसम्मत निर्णय करवाना। इन तीनों कार्यों को जिस सफलता के साथ सरदार ने प्रतिपादित किया, वह उनकी ही सूझ-बूझ थी।

अपने अध्यक्षीय भाषण में सरदार पटेल ने स्वदेशी भावना पर बल दिया और विदेशी सामानों के बहिष्कार की अपील की। इस अधिवेशन में सबसे महत्वपूर्ण प्रस्ताव यह भी पारित हुआ कि राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ आर्थिक आजादी भी लोगों का मौलिक अधिकार होना चाहिए। सरदार पटेल ने अपने भाषण के क्रम में जमींदारों, राजाओं और महाराजाओं के दमन और शोषण की जो चर्चा की, उसे आजादी के बाद देशी रियासतों को समाप्त कर दिखाया।

इसके पहले 1928 में पं० मोतीलालजी के जेल जाने पर और 1934 में डा. राजेन्द्र प्रसाद के जेल जाने पर भी सरदार पटेल स्थानापन्न काँग्रेस अध्यक्ष रहे थे। उनके नेतृत्व की क्षमता और

कर्मठता का लाभ कॉंग्रेस को सुदृढ़ता के रूप में मिला। कॉंग्रेस अध्यक्ष के रूप में सम्मानित उनका व्यक्तित्व पूरे देश के लिए ऊर्जा का स्रोत बना और आगे के दिनों में कॉंग्रेस जिस भाँति आजादी की लड़ाई में जूझी वह सरदार के समय कॉंग्रेस को हर दृष्टि से सक्षम और संगठित करने का ही फल कहा जाएगा।

* * *

13

करेंगे या मरेंगे

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में 1942 का साल स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने वाला वर्ष है। इसी साल गाँधीजी ने देश को दो नारे दिए—'करेंगे या मरेंगे' और 'अँग्रेजों भारत छोड़ो'। यह आह्वान गाँधीजी के मुख से 8 अगस्त 42 की रात को बम्बई-काँग्रेस के महाधिवेशन में निकला। 9 अगस्त की किरण फूटने के पहले ही काँग्रेस के सभी बड़े नेता जेलों के सीकचों में डाल दिए गए। मानों ब्रिटिश सरकार कह रही हो, लो जो कुछ करना हो, यहीं करो और यहीं मरो।

'अँग्रेजों भारत छोड़ो' गाँधीजी ने भले ही 8 अगस्त की रात में कहा हो तथा 9 अगस्त को देश के सभी नेतागण भले ही नजरबंद हो गए हों, लेकिन कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक गाँधीजी का यह वाक्य चिगारी के समान फूट पड़ा। कहीं रेल लाइन उखाड़ी जा रही है, कहीं कोर्ट-कचहरी पर झंडे फहराए जा रहे हैं, कहीं टेलिफोन के तार काटे जा रहे हैं, कहीं थानों-कचहरियों में आग लगाई जा रही है, कहीं सचिवालय पर उग्र भीड़ झंडा फहराने को जमा हो रही है। कोई ऐसे समय यदि सवाल उठा रहा है—भाई क्या कर रहे हो? उत्तर हाजिर है—वही, जो गाँधीजी ने कहा है। क्या ? फिर कोई पूछता है। यही कि करो या मरो ! जवाब सुनने को मिलता है। यानी अँग्रेजों को

भगाना है तो कुछ करना है। भले हम मर ही क्यों न जाएँ। क्या करना है? यह गाँधी बाबा ने कुछ नहीं बताया। न बताएँ, हम जानते हैं। ऐसा कुछ करो, जिससे अँग्रेज भाग जाएँ।

1942 की क्रान्ति! मतवालेपन का ही दूसरा नाम। आदेश देने वाले, मार्गदर्शन करने वाले, संभालकर ले चलने वाले—सबके सब जेलों में। लाख की संख्या पार कर गई। जेलों में जगह नहीं। बंदूकों की गोलियाँ भी कम पड़ने लगीं। एक ओर द्वितीय विश्वयुद्ध की लपटें, तो दूसरी ओर भारतीय नवजवानों की ललकार—

'कदम कदम बढाए जा, खुशी के गीत गाए जा
यह जिन्दगी है कौम की, तू कौम पर लुटाए जा'

इसके साथ ही रह-रहकर गगनभेदी नारा-'अँग्रेजों भारत छोड़ों', 'करेंगे या मरेंगे'। डू ओर डाई। क्विट इंडिया। कहने वाले यह भी कहते हैं कि 1857 की क्रान्ति के बाद भारत में 1942 की क्रान्ति मील का एक पत्थर है। इस क्रान्ति की एक सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि काँग्रेस महाधिवेशन में इसे पारित करने वाले सभी जेल में थे और इधर आम जनता ने, छात्रों-नवजवानों ने, शिक्षकों-बुद्धिजीवियों ने, किसानों-मजदूरों ने इसकी मशाल थाम ली थी—गाँधी ने यह मशाल जलाई है, हम इसे बुझने नहीं देंगें।

सरदार पटेल के जीवन से 1942 की इस क्रान्ति का विशेष महत्व है। इसलिए कि उस समय काँग्रेस में दो विचारधाराएँ बन गईं थी। एक का कहना था कि इस समय ब्रिटिश सरकार द्वितीय महायुद्ध में फँसी हुई है, अतः इस समय आन्दोलन छोड़ देना चाहिए। दूसरा खेमा बस एक बात पर अडिग था—जो गाँधीजी कहें, करो। और गाँधीजी कर रहे थे—गुलाम देश को अपनी मर्जी से निर्णय लेने का कोई अधिकार नहीं है। हमें व्यर्थ ही युद्ध में

झोंका जा रहा है। यही समय है, अँग्रेजो तुम अपनी सरजमीं पर वापस जाओ। इसमें पहली विचारधारा के पोषकों में जवाहरलाल नेहरू, सी. राजगोपालाचारी, मौलाना अबुल कलाम आजाद थे, तो दूसरी विचारधारा को आँख मूंदकर अनुमोदित करने वालों के अगुआ सरदार वल्लभभाई पटेल और साथ में बाबू राजेन्द्र प्रसाद, खान अब्दुल गफ्फार खान आदि थे। विचारों की यह कशमकश पिछले दो सालों से दूसरे महायुद्ध की घोषणा के साथ ही चली आ रही थी, कुछ.लोगों का भ्रम था—यह उचित अवसर नहीं है। बहुतों का विश्वास था—गाँधीजी जब कह रहे हैं, तब इससे अच्छा अवसर और कोई दूसरा हो ही नहीं सकता।

सरदार वल्लभभाई पटेल युद्ध विरोधी अभियान के सिलसिले में 17 नवम्बर 1940 को अहमदाबाद में गिरफ्तार कर लिए गए। इस बार जेल में सरदार का स्वास्थ्य अतिशय गिर गया, तो लाचार होकर सरकार ने उन्हें 1942 में छोड़ दिया। बात आराम करने की थी, लेकिन सरदार को तो दूसरी ही धुन सवार थी। उन्होंने आनन्द की एक सभा में आह्वान किया—'महाभारत के युद्ध की कथाएँ सुनी हैं। मुलम्मा चढ़ाई हुई बातें सुनी हैं। महाभारत का युद्ध इस विश्वयुद्ध के आगे कुछ नहीं था। महाभारत की लड़ाई में वे मर्यादित क्षेत्र में लड़ते थे। आजकल की लड़ाई का मैदान जहाँ लड़ाइयाँ होती है वहीं नहीं होता, बल्कि जितने देश उसमें शरीक होते हैं, वे सब लड़ाई के मैदान में हैं। जमीन पर ही नहीं आकाश में भी लड़ाई होती है, पाताल में पानी में भी लड़ाई होती है। लड़ने वालों को यह पता नहीं होता कि परिणाम क्या होगा।....

'दुनिया में जब ऐसा भंयकर युद्ध हो रहा है, तब एक आदमी जमीन पर पैर रखकर कहता है कि जो मनुष्य तलवार से लड़ते हैं,

उनका पतन तलवार से ही होगा तलवार से ही उनके हाथ नीचे गिरेंगे।....'

'हमें एक बात समझ लेनी है। किसी भी तरह की अव्यवस्था हो जाए, तो कुत्ते-बिल्ली की मौत हमें नहीं मरना है। गाँधीजी से एक चीज सीखने की है—निर्भयता। इस जीवन में आपके लिए जो अवसर आया है, वह किसी जन्म में नहीं आएगा।'

रात-दिन गुजरात और महाराष्ट्र के कोने-कोने में जाकर सरदार बस एक ही अलख जगा रहे थे—'देश में जो इनकलाब आने वाला है, वह इतना अधिक प्रचंड और तेज होगा कि उसमें तमाम स्त्री और पुरुष, छोटे और बड़े सक्रिय भाग लेंगे। अगर उन्होंने भाग लिया तो आजकल विलायती और अमेरिकी अखबार जो आलोचनाएँ कर रहे हैं, उनको जवाब मिल जाएगा। अगर काँग्रेस के पीछे थोड़े से ही लोग हों, तो इतनी अधिक घबराहट, इतना ज्यादा रोष और इतनी सी तड़प क्यों है? अगर थोड़े से ही आदमी गाँधीजी की इस लड़ाई के पक्ष में हो तो उन थोड़े से लोगों के लिए जेलों में जगह है। मगर उन्हें पता लग गया है कि यह लड़ाई ऐसी होगी, जैसी हिन्दुस्तान में आज तक कभी नहीं हुई थी।'

सरदार का कहना सही था। 42 के समान क्रान्ति की मशाल कभी नहीं जली थी। और उसका ही नतीजा हुआ कि 8 अगस्त 1942 को बम्बई में गाँधीजी की मंशा के अनुसार श्री जवाहरलाल नेहरू नें यह प्रस्ताव महासमिति के सामने रखा और सरदार वल्लभभाई पटेल ने अनुमोदन किया। नामात्र लोगों के अलावा सभी ने इसके पक्ष में मत दिए। इस अवसर पर प्रस्ताव का समर्थन करते हुए सरदार वल्लभभाई पटेल ने सिंह के समान जो भाषण दिया था, उसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत करना आवश्यक है—

'लड़ाई खतम होने पर हमें आजादी देने का वचन दिया जाता है, मगर हम इस वचन को कैसे मानें? इसका क्या भरोसा कि लड़ाई के अंत में हिन्दुस्तान को आजादी देने के लिए आप रहेंगे या नहीं या आपमें वह आजादी देने की ताकत बाकी रहेगी या नहीं? लड़ाई के अंत में हिन्दुस्तान ही दूसरों के हाथों में पड़ जाए तो फिर ब्रिटेन उसे आजादी देने कहाँ से आएगा? फिर हम उस समय चर्चिल साहब को कहाँ ढूंढने जाएंगे? और मान लिजिए कि आप जीत गए? अभी तो आपके कंठ में प्राण हैं, तब आप ऐसी हरकतें कर रहे हैं, तो फिर जीतने के बाद तो हिन्दुस्तान क्या आपके गले से छूटने वाला है? क्या हम इतना भी नहीं समझते?'

इस प्रकार हम देखते हैं कि सरदार पटेल42 की भूमिका बनाने के लिए गुजरात के गाँव-कस्बों में घूम-घूमकर एक वातावरण बना रहे थे और उनका भाषण लोगों के दिलों को छूने वाला होता था। साफ़ और सही बात! कहीं किसी प्रकार के दिखावे की जरूरत नहीं। इसका ही प्रभाव पड़ा कि गाँधीजी, नेहरूजी, सरदार, राजेन्द्र बाबू, मौलाना आजाद जैसे सभी नेताओं तथा कार्यकर्ताओं के जेल चले जाने के बाद भी क्रान्ति की आग नहीं बुझी।

एक ओर नेतागण जेल में थे और दूसरी ओर अँग्रेज सरकार का दमनचक्र आम जनता पर शुरू हुआ। कितने लोग गोलियों के शिकार हुए, हजारों देवियों का सुहाग लुटा, माताओं की गोदें सूनी हुईं—लेकिन भारतीय मानस ने हार नहीं मानी। उसके कानों में गाँधीजी की वह आवाज गूँज रही थी, जिसे उन्होंने 8 अगस्त 42 की मध्य रात्रि में काँग्रेस महासमिति के सामने दिया था—। 'मैं इस लड़ाई में आपका नेतृत्व करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेता हूँ। सेनापति अथवा नियंत्रक के रूप में नहीं, बल्कि आपके एक तुच्छ सेवक के रूप में।' उस समय पूरा का पूरा भारत गाँधीमय हो गया था।

1942 में सरदार पटेल देश के अन्य कई बड़े नेताओं के साथ अहमदनगर जेल में रखे गए जहाँ लगभग तीन वर्षों तक सभी नेताओं को रहना पड़ा। इस बीच सरदार का स्वास्थ्य निरन्तर गिरता गया। उसकी उन्हें परवाह नहीं थी, क्योंकि सरदार की टेक तो वहीं थी, जो गाँधीजी ने बताई थी—करेंगे या मरेंगे।

* * *

14

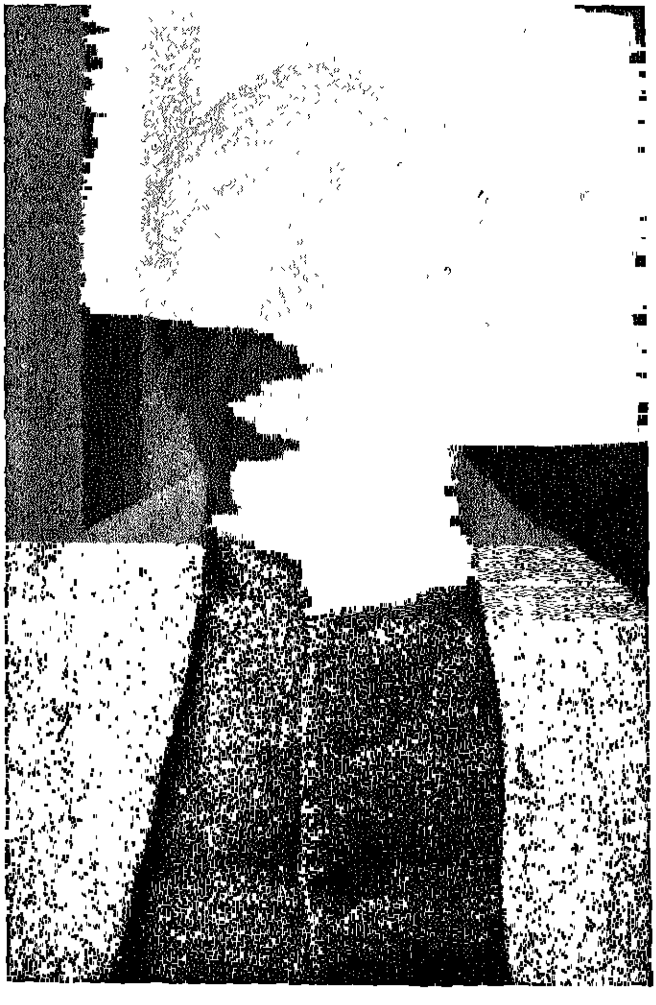
विभाजन और आजादी

गाँधीजी के नेतृत्व में आजादी के आन्दोलन के कारण अँग्रेजों को भारत छोड़ना पड़ा। यह हमारे नेताओं और भारतीय जनता की बहुत बड़ी जीत थी। लेकिन अँग्रेज़ जाते-जाते भारत को दो टुकड़ों में बाँट गए। 14 अगस्त को पाकिस्तान बना और 15 अगस्त को भारत आजाद हुआ। उस समय देश के एक महान कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने कहा था–

'मां का अंचल है फटा हुआ, इन दो टुकडों को सीना है
देखें देता है कौन खून, दे सकता कौन पसीना है'

हाँ, भारत उस दिन आजाद हुआ था, लेकिन खंडित होकर। खुशियों की मुस्कराहट या खिलखिलाहट में गम के आँसुओं ने भी कितनों को मर्माहत करके रख दिया था। आदिकाल से, आर्यों के समय से, वेदों और पुराणों के रचनाकाल से देश एक था–भारतभूमि, वही राजनीतिक रूप से दो हो रही थी। एक भाई यहाँ रह रहा था, तो दूसरा उस ओर। और दोनों का बँटवारा भी इसी तरह हो रहा था मानों घर के दो सगे भाइयों के बीच मकान का बँटवारा हो–दालान, आंगन, बाग-बगीचा सब दो फांक हो जाएँ। लेकिन यह एक सच्चाई थी। कड़वी सच्चाई–जिसे न गाँधीजी रोक सके, न जवाहरलाल, न ही मौलाना आजाद और न सरदार वल्लभभाई पटेल। उसमें

विस्तार से न जाकर यहाँ उन परिस्थितियों का पहले हम अवलोकन करें। इसके साथ ही यह भी देखें कि सरदार वल्लभभाई पटेल की भूमिका इसमें क्या थी।



सरदार वल्लभभाई पटेल

जैसा कि कहा जा चुका है 1942 में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस को अवैध घोषित कर दिया गया और उसके सभी नेताओं को जेल में डाल दिया गया। सरदार भी उन्हीं नेताओं में थे, जिन्होंने तीन साल कारावास की सजा अहमदनगर जेल में बिताकर 1945 में मुक्त गगन के दर्शन किए। पीछे दारूण अतीत था, तो आगे अनिश्चित भविष्य। उस दौरान घटनाएँ बड़ी तेजी से घट रही थीं।

1942 से 45 के दौरान जब काँग्रेस के अधिकांश नेता जेलों में थे, तो उस बीच मुस्लिम लीग ने एक ओर सांप्रदायिकता के बीज बड़ी गहराई से बोये और अँग्रेजों के साथ होकर उसने अपने को हर प्रकार से मजबूत बनाने की कोशिश की। अँग्रेजों की यह नीति थी कि हिन्दुओं और मुसलमानों में आपसी मतभेद बना रहे, जिससे ये कभी एक न हों और भारत की आजादी अधर में लटकी रहे। इस संबंध में सरदार पटेल का स्पष्ट मत था—'यह बड़ा नाजुक समय है और विभाजन का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण है। सभी काँग्रेसजनों का यह अत्यावश्यक कर्तव्य है कि वे व्यक्तिगत रुचि-अरुचियों और पूर्वाग्रहों को अलग रखकर काँग्रेस की अधिकृत नीति पर एकत्रित रहें।'

भारत में परिवर्तन की जो राजनीति तेजी से दिखलाई दे रही थी, उसके पीछे ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली का भी बहुत बड़ा हाथ था। उनका मजदूर-दल 1945 के आम चुनाव में प्रबल बहुमत से ब्रिटेन में सत्तारूढ़ हुआ। उन्होंने चुनावों के समय ही अपने दल की एक नीति घोषित की थी कि वे सत्तारूढ़ होते ही भारत को पूर्ण स्वतंत्रता देने की नीति अपनाएंगे। इन्हीं उद्देश्यों को लेकर लार्ड वावेल भारत आए और 21 अगस्त 1945 की ब्रिटिश सरकार ने भारत में अंतरिम सरकार का गठन करने के लिए केन्द्रीय तथा प्रान्तीय धारासभा के चुनावों की घोषणा भी कर दी। भारत में अंतिम चुनाव 1934 में हुए थे, जिनके फलस्वरूप 1937 में देश

के नौ राज्यों में काँग्रेस की सरकार गठित हुई थी। उस समय काँग्रेस ने पार्लियामेन्ट्री बोर्ड का अध्यक्ष सरदार को ही बनाया था। इस बार सरदार जेल से छूटने के बाद अस्वस्थ थे और गाँधीजी के साथ पूना के पास उरुलीकांचन में स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे, लेकिन काँग्रेस ने पुनः उनके ऊपर ही चुनावों का बहुत बड़ा दायित्व सौंप दिया। यहाँ तक कि सभी उम्मीदवारों को चुनाव लड़ने के लिए फन्ड की व्यवस्था भी इनके ऊपर ही पड़ी। सरदार पटेल ने यह अनुमान लगा लिया था कि मुस्लिम लीग के कारण कठिनाइयाँ बहुत हैं। वे बहुत नजदीक से कायदे आजम जिन्ना को भी जानते थे। फिर भी उन्होंने इसके लिए जी-जान लगा दी। किसी उम्मीदवार को किसी प्रकार का अभाव नहीं होने दिया। टिकटों के बंटवारे से लेकर वित्तीय सहायता का भार भी उन्होंने ढोया और काँग्रेस विजयी रही। सरदार ने चुनावों के समय ही देश की जनता को यह विश्वास दिला दिया था—'जहाज किनारे पर पहुँच गया है। .... भारत की आजादी निकट आ गई है।'

बात सही थी। चुनावों की प्रक्रिया चल ही रही थी कि ब्रिटिश-सरकार ने भारत को आजाद कराने संबंधी आवश्यक जॉच-पड़ताल और रिपोर्ट हेतु तीन सदस्यीय कैबिनेट-मिशन यहाँ भेजा जिसमें भारतमंत्री लार्ड पैथिक लारेन्स, स्टेफोर्ड क्रिप्स और ए.वी. एलेक्जेंडर शामिल थे। केबिनेट-मिशन 24 मार्च 1946 को भारत पहुँचा।

केबिनेट-मिशन के सामने मुख्यरूप से काँग्रेस की ओर से कॉग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद, पं. जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभभाई पटेल ने भारत के भविष्य की पूरी दलील पेश की। पटेल गाँधीजी के इस विचार से सहमत थे कि किसी प्रकार भी देश का विभाजन नहीं होना चाहिए। लेकिन बाद के दिनों में देश के अनेक हिस्सों में दंगों की

जो भयानक आग लगी और भयंकर मार-काट शुरू हुई उसने सरदार पटेल को भी हिला दिया। उन्होंने एक जगह कहा है कि मानवता के खून की होली यदि बँटवारे से ही बंद होनी है, तो वही हो जाए। जवाहरलाल नेहरू ने भी इसे स्वीकार किया। गाँधीजी का कहना था कि भारत और पाकिस्तान मेरे जीते जी दो नहीं हो सकते, लेकिन व्यावहारिकता के सामने उन्हें भी इसे मंजूर करना पड़ा। केबिनेट-मिशन यहाँ लगभग 4 महीने रहा। इसको यदि सरदार पटेल का सहयोग न मिला होता तो एक ओर उसे खाली हाथ लौटना पड़ता और दूसरी ओर भारत की आजादी भी कुछ वर्षों के लिए टल जाती। सरदार पटेल के महत्व को समझने के लिए 'बारडोली के सरदार' नामक पुस्तक का सहारा लिया जा सकता है, जिसके विद्वान लेखक रंजन परमार ने उस समय का जीवन्त वर्णन किया है– 'भारतीय नेताओं के साथ लम्बी चर्चा के बावजूद भी स्पष्टीकरण, शंका-निवारण, वक्तव्य खंडन की नौबत आए-गए दिनों त्रि-मंत्री मिशन के सामने आती रहती थी। अंत में मिशन के नेता लार्ड लारेन्स का ध्यान सरदार पटेल की ओर गया। उन्होंने भली-भाँति अनुभव किया कि जहाँ अन्य भारतीय नेता किसी विषय पर अपने विचार कायम करने के पूर्व ही फिसल जाते थे, वहाँ सरदार पटेल अपनी बात पर प्रायः दृढ़ रहते थे। अतः सरदार से भेंटकर वार्तालाप करने का मन ही मन निश्चय कर एक रविवार की दोपहर में लार्ड पैथिक लारेन्स श्री सुधीर घोष को अपने साथ लेकर किसानों के प्रतिनिधि अक्खड़ भारतीय सरदार पटेल से मुलाकात करने गए। सरदार उन दिनों बिरला भवन में ठहरे हुए थे। बिरला भवन जाने पर ज्ञात हुआ कि वे महात्मा गाँधी से भेंट करने के लिए भँगी कालोनी गए हुए हैं। दोनों जब भँगी कालोनी जा रहे थे तो सरदार पटेल गोल डाकखाने के पास गिरिजाघर के सामने उधर से आते हुए मिल गए। लार्ड पैथिक लारेन्स ने अपनी कार रोककर सरदार से भेंट करने की इच्छा प्रदर्शित की। फलतः मणिबेन और सरदार उनके

साथ हो लिए। केबीनेट-मिशन के निवास स्थान पर दीर्घ अवधि तक तीनों सदस्यों के साथ सरदार की दिल खोलकर चर्चा हुई हर पहलू और प्रस्ताव पर दिल खोलकर मशविरा हुआ।' इस एक घटना से ही सरदार पटेल के महत्व को आँका जा सकता है।

उसके बाद की घटनाओं में बहुत विस्तार से न जाकर इतना कहना काफी है कि 12 अगस्त 46 को कॉंग्रेस अध्यक्ष होने के नाते वायसराय ने पं. जवाहरलाल नेहरू को अन्तरिम सरकार गठन करने का निमंत्रण भेजा, जिसे उन्होंने काँग्रेस कार्यसमिति, महासमिति और गाँधीजी की सलाह से स्वीकार किया। यहाँ सरकार पटेल की विशेष भूमिका यह भी थी कि उन्होंने इसके लिए सब को तैयार किया, क्योंकि उन्हें इस बात की भनक लग चुकी थी कि यदि कॉंग्रेस सरकार का गठन नहीं करती है, तो तुरन्त यह निमंत्रण मुस्लिम-लीग को भेज दिया जाएगा। काँग्रेस के बाद केन्द्रीय धारासभा में उसका ही बहुमत था। जवाहरलाल नेहरू ने इस निमंत्रण को स्वीकार करते हुए अस्थायी सरकार का गठन किया जिसमें उनको छोड़कर 11 सदस्य शामिल किए गए—सर्वश्री सरदार वल्लभभाई पटेल, डा. राजेन्द्र प्रसाद, शरतचन्द्र बोस, जगजीवन राम, राजगोपालाचारी, आसफअली, जान मथाई, सरदार बलदेव सिंह, सर शफात अहमद खां, सैयद अली जहीर और सी.एच.भाभा।

बाद में अन्तरिम सरकार में मुस्लिम लीग भी शामिल हो गई, लेकिन उसके इरादे साफ नहीं थे। वह अंदर जाकर काँग्रेस को झुकाना चाहती थी तथा देश को तोड़ना चाहती थी। उस समय के लीग के एक बड़े नेता श्री गजनफर अली ने अपने एक भाषण में साफ कहा था—'मुस्लिम-लीग अंदर से सीधी कार्यवाई करने के लिए अन्तरिम सरकार में शामिल हुई है। मैं घर से निकला तो सोच रहा था कि जेल में जाना होगा, लेकिन इसके बजाय मँत्री बना दिया गया। बस यहाँ तो दो ही रास्ते हैं—या तो काँग्रेस झुके अथवा मारकाट होगी।'

1946-47 का भारत खून से रंगा हुआ भारत कहा जाएगा, जहाँ देश के कई हिस्सों में खून की नदियाँ बहीं। बिहार, बंगाल, पंजाब, सिन्ध, महाराष्ट्र, दिल्ली के अनेक भागों में मानवता सिसकती रही, दानवता का नर्तन होता रहा, लाखों लोग बेघरबार हुए, हजारों मौत के घाट उतारे गए, अपहरण, बलात्कार धर्म परिवर्तन, आगजनी, लूट, सीनाजोरी की घटनाओं से पूरा देश थर्रा रहा था।' महात्मा गाँधी इस आग को किसी भी कीमत पर बुझाना चाहते थे। जवाहरलाल नेहरू, सरदार बल्लभभाई पटेल, मौलाना अबुल कलाम आजाद, डा. राजेन्द्र प्रसाद जैसे काँग्रेस के वरिष्ट नेता और अन्तरिम सरकार के मंत्री सच्चे गाँधीवादी के समान दंगा रोकने के लिए दिन-रात एक कर रहे थे। उनका एक ही ध्येय था कि भारत बंटे नहीं। लेकिन मुहम्मद अली जिन्ना और उनके साथियों ने नफरत और हिंसा की ऐसी आग लगा दी थी, जो बुझाए नहीं बुझ रही थी। ऐसे ही समय में दो बातें महत्वपूर्ण कही जाएँगी—एक संविधान-परिषद का निर्माण और लार्ड वेवल की जगह अर्ल माउंटबेटन का नए वायसराय के रूप में आगमन। यही वायसराय ब्रिटिश-सरकार के आखिरी गवर्नर जनरल हुए।

पहले ब्रिटिश प्रधानमंत्री श्री एटली ने जून 1948 में भारत को स्वाधीनता देने की बात ब्रिटिश-पार्लियामेंट में कही, लेकिन घटनाओं ने इस तेजी से मोड़ लिया कि नए वायसराय लार्ड माउन्टबेटन को 2 जून 1947 को यह घोषणा करनी पड़ी—'15 अगस्त 1947 को हिन्दुस्तान के भारत तथा पाकिस्तान दो भाग हो जाएंगे और ब्रिटिश सरकार दोनों की सरकार को पूर्ण शासन सत्ता हस्तांतरित कर भारत से विदा हो जाएगी।'

इस घोषणा ने काँग्रेस और देश के सामने प्रश्नचिन्ह खड़ा कर दिया। आगे क्या हो? इस पर विचार करने के लिए 14 जून 47 को काँग्रेस महासमिति की ऐतिहासिक बैठक बुलाई गई,

जिसमें 'भारत-विभाजन' के प्रस्ताव को श्री गोविन्दवल्लभ पन्त ने प्रस्तुत किया और गाँधीजी को इसके समर्थन में कहना पड़ा—'काँग्रेस चाहे तो इस प्रस्ताव को स्वीकार करे या अस्वीकार कर दे। लेकिन प्रस्ताव को अस्वीकृत अथवा उसमें संशोधन का अर्थ होगा आपको कॉग्रेस के वरिष्ट नेतृत्व में विश्वास और आस्था नहीं है। परिणामतः उन्हें पद-त्याग करना चाहिए। हालांकि मैं स्वयं इसका विरोधी हूँ, पर कभी-कभी ऐसे निर्णय भी लेने पड़ते हैं, जो गले नहीं उतरते—जिसे मन-मस्तिष्क मान्यता नहीं देते। वस्तुतः ब्रिटिश सरकार की यह योजना ही दोषपूर्ण है। लेकिन यों कहकर नहीं चलेगा। हमें मिट्टी में से सोना निकालना है, समुद्र मंथन हो चुका है। अब विष में से ही अमृत की प्राप्ति करनी है।'

सरदार पटेल को चाणक्य कहा जाता था, इसीलिए कि उन्होंने पहले ही अपना यह निर्णय कह दिया था कि वर्तमान स्थिति में सिवा इसके और कोई चारा नहीं है। उन्होंने संविधान-परिषद की बैठक में बिना किसी छिपाव-दुराव के कहा—'मैंने विभाजन को अंतिम उपाय के रूप में तब स्वीकार किया था, जब संपूर्ण भारत के हमारे हाथ से निकल जाने का खतरा पैदा हो गया था। मुस्लिम लीग के पांच सदस्य देश का बँटबारा करने की मंशा के साथ ही अंतरिम सरकार में सम्मिलित हुए थे।'

गाँधीजी के भाषण और काँग्रेस के बड़े नेताओं के समर्थन के बावजूद भी काँग्रेस महासमिति में कई नेताओं ने विभाजन का भरपूर विरोध किया, जिनमें टंडनजी प्रमुख थे। इस पर वोटिंग हुई और महासमिति ने 29 के मुकाबले 153 मतों से इसे पास किया।

भारत का विभाजन हुआ और भारत को खंडित आजादी मिली। अन्तरिम सरकार चलती रही, लेकिन परिस्थितियाँ

अनुकूल नहीं थीं। तभी तो सरदार पटेल को गुजरात की एक सभा में कहना पड़ा—'हम भी सरकार में तो जा बैठे हैं, परंतु हमें वहाँ सुख-चैन नहीं है। हम लोगों की कठिनाइयाँ दूर करने गए थे, लेकिन अनाज और कपड़े का अभाव, रिश्वतखोरी आदि कई समस्याओं का निबटारा करते-करते उलटे हम वहाँ झगड़ों में फंस गए हैं। सच्चा स्वराज्य चाहिए तो हमें रास्ता बदलना होगा।'

अँग्रेज जाने को तो 15 अगस्त 1947 को चले गए, लेकिन इस देश में अनगिनत समस्याएँ छोड़ गए, जिनसे आज भी देश जूझ रहा है। उस समय की जो सबसे बड़ी समस्या थी वह थी विभाजन के बाद भी देश में 600 के करीब स्वतंत्र अथवा देशी-रियासतों की समस्या, जिन्हें अँग्रेज आजाद छोड़कर गए थे कि आप आजाद हैं, जो निर्णय चाहें लें। भारत में रहना है तो इसमें रहें, पाकिस्तान में मिलना है तो उसमें मिल जाएँ और स्वतंत्र रहना है तो स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखें। सरदार पटेल गृह-मंत्री थे और इस देश के नवनिर्माता, इसलिए उन्होंने इस कठिन समस्या को कैसे निबटाया, इसका वर्णन आगे किया जाएगा। अभी तो इतना ही कि देश आजाद हुआ, लेकिन अपना एक अंग काटकर। इतिहास या राजनीति की निर्ममता ने हमारे भूगोल को बदल दिया।

* * *

15

स्वतंत्र भारत के प्रथम उप-प्रधानमंत्री

15 अगस्त 47 की मध्यरात्रि में जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में जब देश की नई सरकार ने शपथग्रहण की तो सरदार पटेल उस समय यहाँ के उप-प्रधानमंत्री बनाए गए। संगठन की क्षमता, आयु की वरिष्ठता तथा लौहपुरुष के समान काम करने का उनका तरीका ऐसा था कि जवाहरलालजी कहीं भी यह भान होने देना नहीं चाहते थे कि सरदार किसी रूप में उनसे कम महत्वपूर्ण हैं। दोनों नेताओं ने एक तरह से अपना कार्यक्षेत्र भी बाँट लिया था। जवाहरलालजी जहाँ विदेश नीति के मुखिया थे, वहीं सरदार की पैठ गृह-नीति में थी। उम्र के लिहाज से जवाहरलालजी सरदार को सदा अपना बड़ा भाई मानते थे। दोनों गाँधीजी के ऐसे अंग थे कि इनके बिना वे किसी बात की कल्पना भी नहीं कर सकते थे।

शपथ-ग्रहण के बाद से ही सरदार पटेल विभिन्न समस्याओं में घिर गए, लेकिन समय निकालकर वे देश के हर हिस्से का दौरा भी करते रहे। अँग्रेजों ने जब शासन तंत्र भारतीयों के हाथों में सौंपा तो उन्हें यह विश्वास था कि इनसे यह नहीं चलेगा और आपसी कलह, दंगा-फसाद, छीना-झपटी में भारत के कई टुकड़े

हो जाएंगे। लेकिन वे सरदार की कार्यक्षमता के कुछ ही समय में कायल हो गए। जिन बातों को अँग्रेज आई.सी.एस. अधिकारी घंटों की माथापच्ची के बाद भी नहीं निपटा पाते थे, उसे सरदार अपनी विलक्षण बुद्धि के बल पर सैकंडों और मिनटों में हल कर देते थे। उन्हें जो जनता का प्यार और समर्थन मिला था, उसने उन्हें मजबूत बनाया था।

उप-प्रधानमंत्री के रूप में उनका जो सबसे बड़ा अप्रत्यक्ष प्रभाव था वह था उनकी किसानी वेष-भूषा, भारतीय रहन-सहन, आम आदमी के साथ उनका संबंध, देश की नब्ज सही अर्थों में समझने की क्षमता, गाँधीवादी विचारधारा तथा राष्ट्रप्रेम। सरदार इस रूप में औरों से कुछ अलग नजर आते थे। भारत की जनता दो सौ वर्षों से विदेशियों के शासन को अपने माथे पर झेल रही थी, लाल रंग के विदेशी चेहरे, अपरिचित वेष-भूषा और बातचीत तथा रहन-सहन। उनकी जगह सरदार पटेल की धीर गंभीर भारतीय भाषा-वेशभूषा और गाँधीवादी रहन-सहन। अनायास ही लोगों को यह आकृष्ट करता था।

प्रायः सरदार पटेल और जवाहरलाल नेहरू पर एक दोष यह लगाने की कोशिश की जाती है कि इन दोनों नेताओं ने सत्ता सुख भोगने के लिए भारत-पाक बंटवारे का समर्थन किया। इसकी भनक मुख्य रूप से उन अँग्रेज लेखकों की रचनाओं में हम पाते हैं, जिन्होंने भारत की आजादी तथा विभाजन के कारणों पर एक पक्षीय प्रभाव डालने की कोशिश की है।

सरदार पटेल के जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य था अखंड भारत का सपना और राष्ट्रभक्ति! इसके लिए वे बदनामी सहकर भी अपनी दृढ़ता और कर्मठता के बल पर सारे काम किया करते थे। उनके साथ वर्षों जुड़े एक सक्षम अधिकारी वी. शंकर ने उनका आकलन करते हुए एक जगह लिखा है–'सरदार के संपूर्ण राजनीतिक जीवन में उनका मार्ग-दर्शक ध्रुवतारा रहा था भारत

की महत्ता और एकता का मनोरथ। ऐसे कारणों से जिनकी विस्तृत चर्चा यहाँ जरूरी नहीं है, सरदार मुस्लिम लीग के केन्द्र की संयुक्त सरकार में प्रवेश करने तथा इस प्रवेश के परिणामों का अनुभव करने के बाद इस नतीजे पर पहुंचे थे कि इसके बजाय देश का विभाजन करना और भारत के उतने भाग में–जितना उस समय बचाया जा सकता था–एकता की रक्षा करना तथा उस एकता के आधार पर भारतीय राष्ट्र की महत्ता का निर्माण करना अधिक अच्छा होता।'

यह सभी जानते है कि आजादी के बाद और उसके पहले भी दंगों की आँच में पूरा भारत तप रहा था। उप-प्रधानमंत्री, सर्वप्रिय, नेता और गृहमंत्री होने के नाते सरदार को उससे जूझना पड़ा और कई बार इसके लिए जब उन्होंने कठोर कदम उठाए तो उन्हें गलत समझा गया। उस समय शिकायतें की गईं और यहाँ तक कि गाँधीजी से एक वर्ग-विशेष का शिष्टमडल भी मिला कि सरदार पटेल को सरकार से अलग कर दिया जाए। इस पर गाँधीजी ने स्वयं जो कहा उसे सरदार के संबंध में यहाँ देखना जरूरी है– 'वे कहते हैं कि सरदार को हटा दो, तुम अच्छे हो। पीछे सुनाते हैं कि जवाहर भी अच्छा है। तुम हुकूमत में आ जाओ तो हुकूमत अच्छी चले। सब अच्छे हैं, सरदार अच्छे नहीं हैं।.... हुकूमत में न अकेला सरदार है और न जवाहर है। वे आपके नौकर है। उनको आप हटा सकतें हैं, लेकिन इतना तो करें कि सरदार जितनी गलती करते हैं, लोगों में आपस में बात करते हैं, उनको बताओ। मुझको बता दो।

'सरदार सीधी बात बोलने वाले हैं। वे बोलते है तो कड़वी लगती है। वह सरदार की जीभ में है। मैंने उनसे कहा कि आपकी जीभ से कोई बात निकली कि कांटा हो गई। तो उनकी जीभ ही ऐसी है कि कांटा है, दिल वैसा नहीं है उसका गवाह मैं हूँ।'



प्रथम उप-प्रधान मंत्री

गाँधीजी के इस कथन के बाद सरदार पटेल के संबंध में कहने को क्या रह जाता है। सरदार के व्यक्तित्व में एक ओर त्याग–बलिदान का वजन था, तो दूसरी ओर उनकी अपनी

क्षमता। तभी तो खेड़ा और बारडोली से चलकर वे दिल्ली की गद्दी तक पहुंचे थे। उन्होंने जब कार्यभार संभाला तो उनके अनेक आलोचकों को भी उनका लोहा मानना पड़ा।

आजादी के बाद देश का जो नक्शा था, उसे सरदार और जवाहरलाल दोनों मिलकर ही पूर्णता दे सकते थे। इसलिए भारतीय इतिहास दोनों का ऋणी है। उस समय न तो कोई अपनी लीक थी और जो लोग प्रशासन में गए थे वे संघर्ष में तपकर। उन्हें प्रशासन का अनुभव नहीं था, लेकिन लगन थी। उसी लगन ने उन्हें नए भारत का निर्माण करने की क्षमता प्रदान की थी। सरदार उनमें अग्रिम थे। कहने के लिए वे उप-प्रधानमंत्री थे, लेकिन शासन का सारा बोझ उनके ही कंधों पर था। इस रूप में वे मंत्री या उप-प्रधानमंत्री के पद की शोभा भले बढ़ा रहे हो, लेकिन सही अर्थ में उनके सिर पर कांटों का ताज था, जिसे उनके सरीखे लोग यदि उस समय नहीं धारण करते तो हमारा देश टुकड़े-टुकड़े हो जाता। जग में हसाई अलग से होती। और संभव था कि पुनः अँग्रेज लौटकर चले आते, यह कहते हुए कि इन हिन्दुस्तानियों से राजकाज नहीं चल सकता है।

सरदार ने अपने व्यक्तित्व तथा सक्षमता से उन सब को निरुत्तर कर दिया था।

* * *

16

अविस्मरणीय गृहमंत्री

सरदार वल्लभभाई पटेल स्वतंत्रता के साथ ही देश के गृहमंत्री बने। उनके समय में गृह-मंत्री को स्वराष्ट्रमंत्री भी कहा जाता था। दंगों की आग में झुलसते भारत में शांति कायम करना तथा अँग्रेजों द्वारा जाते-जाते अनेक समस्याओं को छोड़ जाना इन सबों का बोझ गृहमंत्री के ही कंधे पर था। सरदार इस रूप में एक अग्नि-परीक्षा से गुजर रहे थे।

उस समय गृह-मंत्री के सामने सबसे बडी समस्या शांति और व्यवस्था की थी। अँग्रेजी शासन काल के सरकारी कर्मचारियों को यह शक था कि काँग्रेस राज में उन्हें कोई जगह शायद ही मिले। सबसे बड़ा पदाधिकारी आई.सी.एस. होता था, जिसमें बड़ी मात्रा में अँग्रेज थे। इसी भांति सी.आई.डी. विभागों के भी बड़े अधिकारी अँग्रेजों के पूर्ण विश्वास पात्र थे।

सरदार ने अपनें कुछ ही दिनों के अपने तजुर्बे से यह समझ लिया था कि जितनी समस्याएँ हैं, उन्हें सुलझाने के लिए अनुभवी अधिकारियों की सख्त जरूरत है। अतः उन्होने इनकी तीन श्रेणियाँ बनाई—एक वे जो पाकिस्तान जाना चाहते हों, वे पाकिस्तान चले जाएँ। दूसरे वे जो सेवा में नहीं रहना चाहते हों वे सेवा-निवृत हो जाएँ। तीसरे वे जो सेवा में रहना चाहते हों, वे अब

अपनी कार्यपद्धति में सुधार लाकर अपने को जनता का सेवक मानें।

इस बीच उन्होंने अधिकारियों की अनेक बैठकें कीं और उन्हें साफ शब्दों में कहा कि हम लोगों को संघर्ष और आन्दोलन का तजुर्बा जरूर है, लेकिन शासन का अनुभव नहीं है। इसलिए आप यदि अपना पूर्ण समर्थन और विश्वास दें, तो हम भी आपको विश्वास में लेने को तैयार हैं। नतीजा यह है कि अधिकांश भारतीय अधिकारियों ने सरकार की सेवा जारी रखी।

सरदार पटेल ने अँग्रेज अधिकारियों की जरूर छुट्टी कर दी। इस भाँति गृहमंत्री के रूप में उन्होंने सबसे पहला और महत्वपूर्ण कार्य शासन तंत्र को सुव्यवस्थित करने का किया।

सरदार पटेल ने ऐसे समय सबसे बड़ा प्रतिमान देशभक्ति और राष्ट्रीयता का रखा। जहाँ नए लोगों की नियुक्ति की आवश्यकता थी वह भी किया। के.पी.एस. मेनन और वी. शंकर जैसे वरिष्ठ आई.सी.एस. अधिकारियों को उन्होंने पूर्ण विश्वास में लिया तथा देशी राज्यों के विलय में उनसे जबावदेही के काम लिए।

अंतरिम सरकार का बनना और दंगों का भड़कना दोनों साथ-साथ हुए थे। पंजाब, बंगाल तथा बिहार के नरसंहारों में लाखों लोग मारे गए थे। सरदार ने इसके लिए बराबर व्यावहारिक पक्ष पर ध्यान दिया। भयंकर दंगों के बीच वे अमृतसर गए और वहाँ लाखों सिक्खों और हिन्दुओं की सभा में उन्होंने समझाया कि जो लोग भारत से पाकिस्तान जाना चाहते हैं, उन्हें शांति से जाने दें तभी उस पार से भी आपके भाई बंद बच कर आ सकेगें, वरना दोनों तरफ के लाखों बेगुनाह लोग मारे जाऐगें। सरदार के समझाने तथा सूझबूझ का ही नतीजा हुआ कि बड़ी संख्या में लोग जीवित बचकर इधर से उधर और

उधर से इधर आ जा सके। गाँधीजी और प्रधानमंत्री नेहरू दोनों की अपील का असर तो हो ही रहा था, लेकिन गृहमंत्री के नाते प्रशासन का सारा बोझ और शांति-व्यवस्था की जवाबदेही पूर्ण रूप से सरदार पटेल की थी। उस समय उनकी आयु 72-73 हो रही थी, जिसमें बीस-बीस घंटें उन्हें लगातार काम करना पड़ रहा था, जिसका प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर भी पड़ा। 1948 में उन्हें दिल का भयानक दौरा पड़ा।

सुप्रसिद्ध चिन्तक मैकियावेली का कहना है कि बुद्धिमान शासक को उसी का भरोसा रखना चाहिए, जो उसके बस में हो। जो उसके बस में नहीं, उसका भरोसा नहीं करना चाहिए। क्योंकि लोग प्यार तभी करते हैं, जब वे प्यार करना चाहते हैं। लेकिन डरते तब हैं, जबकि शासक उन्हें डराना चाहता है।

सरदार के सामने शासक का जो आदर्श था वह सत्य और अहिंसा का था, जिसके पालक महात्मा गाँधी स्वतंत्रता के मसीहा और नेहरू-पटेल के गुरु थे। अतः वे हिंसा अथवा सख्ती के सहारे दंगों या देशी राज्यों से नहीं निपट सकते थे। जहाँ गृहमंत्री के सामने दंगों को शांत करने की विकट समस्या थी, उससे भी बड़ी समस्या लाखों शरणार्थियों की पैदा हो गई। पूर्वी बंगाल से बड़ी मात्रा में हिन्दुओं का आना जारी था, जिसकी प्रतिक्रिया में बिहार में भयानक दंगा भड़क उठा। इसी भांति सिंध और पंजाब से लाखों की संख्या में घर-परिवार लुटाकर सिक्खों और हिन्दुओं का आना जारी था, जो अपनी करुण कहानियाँ सुनाकर इस हिस्से में भी दंगा फैला रहे थे। विस्थापितों से दिल्ली समेत पूरा उत्तर भारत भरता चला जा रहा था।

सरदार को दो-टूक बोलने की आदत थी, उन्होंने रामलीला मैदान, दिल्ली की सभा में बोलते हुए नागरिकों को आह्वान किया— 'लोग कहते हैं काँग्रेस ने मुल्क के टुकड़े कर दिएं। एक तरह से यह बात सच है। हमने सोच-विंचार कर जिम्मेदारी ली

है। किसी के डर या दबाव से नहीं ली। हिन्दुस्तान के टुकड़े करने का मैं सबसे बड़ा विरोधी था। लेकिन जब मैं केन्द्रीय सरकार में आकर बैठा तो देखा कि सांप्रदायिक ज़हर चपरासी से लेकर ऊँचे अधिकारियों तक फैल गया है। ऐसी हालत में साथ रहकर लड़ते रहने और तीसरे से बीच-बचाव कराते रहने से अलग हो जाना ही अच्छा है।'

अमृतसर की जनसभा में सिक्ख भाइयों के बीच जाकर उन्होंने कहा–'मुसलमानों पर आक्रमण करने के पूर्व आपको मुझ पर–सरदार वल्लभभाई पटेल पर आक्रमण कर आगे गुजरना होगा।'

बम्बई के चौपाटी मैदान में वल्लभभाई ने लोगों को संबोधित किया–'जबतक भारत पूर्णतया दिल का परिवर्तन न करे और जिस तरह से हमें स्वतंत्र भारत में अपना काम करना चाहिए, उसी तरह जब तक हम न करें, तबतक हमारा काम ठीक नहीं, तब तक गाँधीजी को चैन नहीं, वह बेचैन रहेगें।' वहीं आगे कहा-'बीती बातें बिसारकर हमें दो कौमों के बीच जो जहर भरा है, वह निकल जाए–ऐसा वातावरण अवश्य पैदा करना चाहिए। मैं जानता हूँ यह कार्य अत्यन्त कठिन है –क्योंकि जो हवा पाकिस्तान में पैदा होती है–उसका थोड़ा बहुत असर भारत पर पड़े बिना नहीं रहता।'

सरदार की साफगोई के बारे में नवाबजादा लियाकत अली खाँ ने एक बार कहा था–'सरदार जो कहते थे वही उनका आशय होता था और उनका जो आशय होता था वही वे कहते थे।'

हम पाते हैं कि गृहमंत्री के रूप में वह सदा चौकन्ना रहते थे, लेकिन उसके बावजूद भी राजधानी दिल्ली में शरणार्थियों के आते ही भयानक मार-काट का दौर शुरू हुआ तो बंद होने का

नाम ही नहीं ले। उसे समाप्त करने के लिए सरदार को सख्त कदम उठाना पडा। उनके आदेश से सेना ने घर-घर में घुंसकर एक से अनेक अस्त्र-शस्त्र निकाले।

अँग्रेजों को विश्वास था कि हिन्दुस्तानियों से राज-काज नहीं चलेगा। स्वतंत्र भारत के गवर्नर जरनल के रूप में अर्ल माउंट बेटन ने जब कार्यभार संभाला तब कुछ लोगों ने इसे भी प्रचारित किया। लेकिन सरदार ने अपनी दृढ़ता और विलक्षण बुद्धि के बल पर साल दो साल के अंदर सब कुछ व्यवस्थित कर दिया। उनके समय के एक विश्वासघात और सुयोग्य अधिकारी वी. शंकर आई.सी.एस. ने नजदीक से सरदार की कार्यप्रणाली को देखकर कहा था– 'सरदार अत्यन्त व्यावहारिक राजपुरुष थे और प्रशासनिक प्रतिभा के धनी थे, इसलिए वे मिलजुल कर काम करने के मूल्य को जानते थे।' वी. शंकर के अनुसार सरदार किसी को परखने की एक ही कसौटी रखते थे—देशभक्ति।

इस प्रकार हम पाते हैं कि गृहमंत्री अथवा स्वराष्ट्रमंत्री के रूप में उन्होंने अपने सिर पर कांटों का जो ताज पहना, उसकी गरिमा कायम रखी। भारत का बच्चा-बच्चा आज भी अपने उस महान नेता को याद करता है, जिन्होंने गृहमंत्री के रूप में राष्ट्र को छिन्न-भिन्न होने से बचा लिया।

निश्चय ही सरदार वल्लभभाई पटेल इस देश के अविस्मरणीय गृहमंत्री थे जिनके बनाए ढांचे पर आज भी प्रशासन की गाड़ी चल रही है।

* * *

17

अखंड भारत का सपना

देशी रियासतों का विलय

सरदार वल्लभभाई पटेल का देश की स्वतंत्रता के साथ ही एक ही सपना था--देशी रियासतों का विलय करके भारत को महान राष्ट्र बनाना। उसे हम अखंड भारत इसलिए भी कह सकते हैं, क्योंकि हमारा जो खंड कटकर विलग हो गया था, उससे बहुत बड़ा हिस्सा इन स्वतंत्र राज्यों का था। कुल मिलाकर इनकी संख्या 600 के क़रीब थी, जिनमें जम्मू-कश्मीर, हैदराबाद, जूनागढ़, जयपूर, जोधपुर बीकानेर, त्रावणकोर-कोचीन, कालाहांडी, राजकोट, भावनगर, नाभा, पटियाला जैसलमेर जैसी अनेक बड़ी-बड़ी रियासते भी थीं। इन सबों का क्षेत्रफल भारतीय क्षेत्रफल के चौथाई से भी ज्यादा था।

अँग्रेजी शासन की बुनियाद एक तो राज्यों के ऊपर निर्भर थी, जहाँ 'छोटे लाट' यानी गवर्नर शासन-सूत्र के सबसे बड़े अधिकारी थे और दूसरी ओर बुनियाद के बहुत बड़े स्तंभ देशी रियासतें थीं, जो हर तरह से ब्रिटिश सरकार के अंतर्गत रहते हुए भी अपनी स्वतंत्र हैसियत को बनाए हुए थीं। उनके राज्य में अपनी विधि-व्यवस्था, पुलिस, कचहरी, न्यायालय, स्कूल-कालेज-विश्वविद्यालय के साथ ही अपनी कर-प्रथा थी। इनमें अनेक राजे महाराजे अपनी मौज-मस्ती और विदेशों में भ्रमण

करने की फिराक में हर तरह से जनता को चूसते थे। कहीं-कहीं तो प्रजा को बैल-भैंस की तरह पेरा जाता था। इनके खिलाफ काँग्रेस के नेतृत्व में अनेक राज्यों में प्रजा-मंडल की स्थापना भी की जा चुकी थी और जनता को अधिक से अधिक संगठित करने, उन्हें स्वायत्त शासन प्रदान करने और उनके अंदर विश्वास भरने का काम भी शनैः शनैः काँग्रेस कर रही थी। 1938 के हरिपुरा कॉग्रेस में इस संबंध में एक प्रस्ताव पारित हुआ। उसमें कहा गया कि भारत के अन्य हिस्सों के समान ही देशी राज्यों में भी कॉग्रेस राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता की हिमायती है।

सरदार पटेल प्रारंभ में यह मानते थे कि लडाई का मुद्दा एक ही होना चाहिए अँग्रेजों को भगाना, इसलिए देशी रियासतों से सीधे तौर पर वे संघर्ष करना नहीं चाहते थे। हालांकि समय-समय पर काठियावाड़, भावनगर और बड़ौदा जैसे बड़े राज्यों में भी वहाँ के लोगों के बुलाने पर सरदार उन जगहों में गए तथा प्रजा-परिषद्द और प्रजा-मंडलों की अध्यक्षता भी की।

उस जमाने में कुछ ऐसे भी राज्य थे जिनका जनता के साथ बहुत ही मधुर संबंध था और उनके कल्याण तथा शिक्षा हेतु उन राज्यों में बहुत कुछ किया गया था। इनमें मैसूर, त्रावणकोर, बड़ौदा, बीकानेर, रीवां आदि मुख्य थे। सरदार आजादी के पहले से ही इन रजवाड़ों के कार्यकलापों से पूर्ण रूप से परिचित थे। इसका एक कारण यह भी था कि इनमें सबसे अधिक गुजरात, राजस्थान और मध्यप्रदेश में देशी रियासतें थीं।

इन देशी रियासतों की समस्या जटिल बनाने में अँग्रेजों की अपनी चाल थी। जिस भांति 3 जून 1947 को ब्रिटिश सरकार ने भारत और पाकिस्तान के विभाजन की घोषणा की और 15 अगस्त को स्वतंत्रता की घोषणा भी उसी दिन की, उसी प्रकार यह भी कहा कि भारत की 565 रियासतें भी स्वतंत्र रहेंगी। इनमें

से जिन्हें पाकिस्तान में मिलना है, उसमें मिलें, जिन्हें हिन्दुस्तान में मिलना है हिन्दुस्तान में मिलें और जिन्हें स्वतंत्र रहना है, वे स्वतंत्र रहें। यह ऐसा चारा था कि भला कौन राज्य अपने को स्वतंत्र निरंकुश सत्ताधारी न रखना चाहेगा। इसके साथ ही भारत और पाकिस्तान दोनों ओर से खींचातानी और प्रलोभन भी खूब हुआ। जिन्ना साहब ने जैसलमेर और जोधपुर के महाराजाओं को बुलाकर यहाँ तक कह दिया कि जो भी शर्तें आप लोग विलयन संबंधी रखेंगे, उन सबो को मैं यानी पाकिस्तान स्वीकार करता है। उन्होंने सादे कागज पर दस्तखत करके भी दे दिया कि आप लोग स्वयं इस पर शर्त बना लें।

गृहमंत्री और अखंड भारत का सपना देखने वाले सरदार वल्लभभाई पटेल दूसरी ओर इन सब बातों पर कड़ी और चौकस निगाह रखे हुए थे। उन्होंने इन सभी कामों के लिए भारतीय प्रशासनिक सेवा के दो वरिष्ट अधिकारियो–श्री वी.पी. मेनन और श्री वी. शंकर को विश्वास में लिया तथा उन्हें इस संबंध में महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व सौपा।

प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने कुछ ही दिनों पहले जम्मू-कश्मीर और नाभा में प्रजा-मंडलों का नेतृत्व किया था तथा महाराजाओं के खिलाफ बड़ी-बड़ी सभाएँ भी की थीं। सरदार इस मसले को साम-दाम-दंड-भेद हर तरह से सुलझाने की क्षमता रखते हुए भी भाईचारे तथा सौहार्द्र के साथ इसका हल निकालना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने 10 जुलाई 1947 को अपने निवासस्थान, दिल्ली में देश के ऐसे अधिकांश नरेशों को बातचीत के लिए निमंत्रित किया। जो पत्र उन्हें भेजा वह राष्ट्रीयता और विनम्रता से भरा हुआ था– 'मुझे आशा है कि भारत के देशी राज्य इस बात को अच्छी तरह समझ लेंगे कि हमारे परस्पर कल्याण के लिए हम सहयोग की भावना से कार्य नहीं करेंगे, तो देश में अराजकता और अंधाधुंधी फैल जाएगी।

उसके फलस्वरूप हममें से छोटे-बड़े सबका सर्वनाश हो जाएगा......।'

'हमें विदेशी और विदेशों के बीच होने वाले कौल-करार और संधिपत्र की जरूरत नहीं है। हमें तो भाई-भाई के समान अपने सामान्य हित का विचार करने के लिए एक साथ बैठकर जैसी बातचीत करते हैं और दोनों के मन को संतोष हो ऐसे निर्णयों पर पहुचते हैं, वैसी ही बातचीत और निर्णय करने के लिए एकत्र होना है।'

इस निमंत्रण के आधार पर ही 10 जुलाई 1947 को यानी आजादी के पहले ही अनेक महाराजाओं और दीवानों की बैठक सरदार के घर पर हुई। इसमें मुख्य रूप से चार बातो पर विचार केन्द्रित किए गए—

1. देश की सुरक्षा, विदेशों के साथ संबंध तथा डाक-तार-रेलवे और अन्य व्यवहार
2. वर्तमान स्थिति से संबंधित करार के बारे में चर्चा
3. स्टेट डिपार्टमेन्ट को सलाह देने वाली परामर्शदात्री समिति के विषय में चर्चा
4. राज्यों के साथ पत्र-व्यवहार या अन्य व्यवहार करने वाली भारत सरकार के माध्यम का निर्णय।

उस बैठक में पटियाला और ग्वालियर के महाराज स्वयं आए, लेकिन अन्य बड़े राजाओं-महाराजों ने अपने दीवानों को इसलिए भेजा कि उन्हें यह गंवारा नहीं था कि सरदार पटेल उन्हें बातचीत के लिए बुलाएँ अभी तक वे इसी ताव में थे कि उनकी हैसियत किसी ब्रिटिश राजा या सम्राट से कम नहीं है। अनेक महाराजाओं ने तो किसी को भेजा भी नहीं। एक बात यह भी कि उन दिनों राज्यो के दीवानों का दर्जा मुख्यमंत्री के समान होता था और वे ही किसी प्रकार की बातचीत करने में सक्षम थे, इसलिए

भी वे ही आए। बातचीत का विषय चाहे कुछ भी हो, अप्रत्यक्ष रूप से उनके बुलाने का उद्देश्य था उन्हें भारतीय संघ में शामिल करना। इसके बाद जो घटनाएँ दो महीनों के अन्दर ही तेजी से बढ़ीं, तो उसमें तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड माउन्टबेटन, जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल के अलावा कई रजवाड़ों ने भी बहुत अच्छी भूमिका निभाई। सरदार पटेल इस संबंध में स्वयं जाकर उदयपुर के महाराणा से मिले, जिनकी ऐतिहासिक गरिमा थी और स्थान था। महाराणा स्वयं अस्वस्थता के कारण चल-फिर नहीं सकते थे। अतः भारत के साथ मिलने संबंधी दस्तावेज पर सबसे पहला दस्खत उन्होंने किया, जिसका बहुत अच्छा असर हुआ। उसके बाद सरदार ने एक प्रकार से सबों को अंतिम चेतावनी दे दी कि वे 15 अगस्त 1947 तक जरूर विलय-प्रस्ताव स्वीकार करें। इसके लिए एक करारनामा भी तैयार किया गया, जिसमें सरकार ने उन्हें प्रीविपर्स देने की बात स्वीकार की तथा राजाओं को और भी कई रियायतें दी गई। 565 देशी रियासतों में से 300 के करीब रियासतों ने तो लगभग स्वेच्छा से आकर हस्ताक्षर कर दिए। शेष कई रियासतों के राजाओं और दीवानों ने तरह-तरह की बातें शुरू कीं। इनमें कुछ ऐसे भी थे, जो अपनी स्वतंत्र हैसियत रखना चाहते थे। हालांकि यह संभव नहीं था, क्योंकि उनकी भौगौलिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि वे सागर में रहकर मगर से बैर करते। इन सभी बातों के पीछे सरदार का व्यक्तित्व काम कर रहा था। उन दिनों प्रायः पत्रों में यह टिप्पणी आती थी कि सरदार ने चाणक्य बुद्धि का परिचय दिया।

इसमें सबसे बड़ी समस्या पैदा की चार राज्यों ने—त्रावणकोर, कोचीन, निजाम हैदराबाद, जम्मू-कश्मीर और जूनागढ़। इनमें जूनागढ पाकिस्तान में मिलने के हिमायती थे और हैदराबाद तथा त्रावणकोर स्वतंत्र रहने के। कश्मीर की भी लालसा थी कि वह नेपाल के समान ही स्वतंत्र राज्य की हैसियत

बनाए। कश्मीर के इस अनिर्णय का लाभ उठाते हुए पाकिस्तान ने उस पर धावा बोल दिया और उसकी सेना श्रीनगर में जब प्रवेश कर गई तो वहाँ के महाराजा हरिसिंह जी को सरदार से मदद लेनी पड़ी। वे स्वयं तो कश्मीर छोड़कर भाग गए, लेकिन वहाँ के युवराज श्री कर्णसिंह जी को कम आयु में ही गद्दी नसीन किया गया तथा उन्होंने ही भारत विलय का प्रस्ताव हृदय से स्वीकार किया। हैदराबाद में पुलिसबल का प्रयोग करना पड़ा तथा त्रावणकोर-कोचीन के दीवान सर सी.पी. रामास्वामी को मृत या जीवित पकड़कर लाने के लिए सरदार पटेल ने जब दूत भेजा, तो उसके पहले ही वे देश छोड़कर भाग गए। इस भाँति की हलचल को देखकर और परखकर जूनागढ के नवाब ने घुटने टेक दिए।

जो राजा-महाराजे किसी भी हिन्दुस्तानी नेता से बातचीत करने में अपनी बेइज्जती समझते थे, उन्होंने जब भारत के गृहमंत्री का लौह व्यक्तित्व देखा तो झुकने के सिवा उनके पास कोई चारा नहीं रह गया। हालांकि उनमें बहुत से ऐसे देशभक्त भी थे जिन्होंने भारत की अखंडता को सहर्ष वरण किया तथा अपने स्वतंत्र राज्य का अस्तित्व स्वेच्छा से समाप्त किया।

15 अगस्त 1947 तक मात्र तीन ही ऐसे राज्य थे जो भारतीय संघ में शामिल नहीं हुए थे–हैदराबाद, जम्मू-कश्मीर तथा जूनागढ। इनमें जैसा कहा गया है हैदराबाद और कश्मीर जहाँ स्वतंत्र रहना चाहते थे, वहीं जूनागढ पाकिस्तान में विलय का इरादा रखता था। उसके भौगोलिक स्वरूप को देखते हुए यह संभव नहीं था। अतः इन तीनों का मामला भी कुछ शांति, कुछ अशांति और कुछ नीति के हिसाब से निबटाकर देशी राज्यों के विलयन का मामला पूर्ण रूप से हल कर दिया गया। केवल एक कश्मीर के मामले में कहीं थोड़ी-बहुत कमी रह गई, जिसके चलते उसका एक हिस्सा अभी तक पाकिस्तान के हाथ में है। इन

देशी राज्यों के भारत में विलयन से एक बात और भी प्रत्यक्ष हुई, जिसका हवाला बार-बार सरदार पटेल अपने भाषणों में दिया करते थे कि एक हिस्सा भारत का कटकर पाकिस्तान बना, उससे बड़ा हिस्सा इन देशी रियासतों का भारत के साथ मिला।

सरदार के जीवनी लेखकों में से अधिकांश ने देशी रियासतों के विलय की कहानी को काफी विस्तार से लिखा है। कारण गृहमंत्री और इन राज्यों के प्रभारी मंत्री के रूप में जिस दूरदर्शिता का परिचय सरदार ने दिया, उसकी मिसाल बहुत कम मिलती है। यह केवल शांतिपूर्ण तरीके रे निबटने का मामला नहीं था, वरन् सख्ती के साथ कारवाई करने का भी सवाल था। गाँधीजी उन दिनों जीवित थे, जब उन्हें पहली बार कश्मीर और हैदराबाद में पुलिस कारवाई और सेना प्रवेश की बातें मालूम हुईं तो उन्होंने इसके विरोध में कुछ बातें कहीं, लेकिन जब सरदार ने स्वयं उन्हें देश की अखंडता की बात कही तो गाँधीजी ने इसका जोरदार समर्थन किया।

ये सभी स्वतंत्र रजवाड़े, जिन्हें हम देशी रियासतें कहते रहे हैं, अपने आपमें एक स्वतंत्र देश थे, जो भारत में रहकर भी भारत से अलग थे। उनके मिल जाने से भारत का जो विशाल स्वरूप सामने आया, वह संभवत: सम्राट अशोक और अकबर को छोड़कर शायद ही कभी इतना विशाल रहा हो। अशोक और अकबर का काल इतिहास का ऐसा काल था जहाँ सत्ता का केन्द्रीकरण सम्राट में था, लेकिन यहाँ सत्ता का अर्थ जनता है। आज सही अर्थ में स्वाधिकारी जनता है। अत: जहाँ देश के एक बड़े भू-भाग में आजादी के बाद भी राजतंत्र बना रहता, वहीं आजादी के साथ-साथ हर ओर जनतंत्र यानि लोकतंत्र की दुंदुभी बजी। इस संबंध में स्वयं सरदार वल्लभभाई पटेल ने 12 अक्तूबर 1949 को संविधान-सभा के सामने ऐतिहासिक भाषण दिया, जिसमें उन्होंने घोषणा की– 'अब देशी राज्यों के

एकीकरण की प्रक्रिया पूरी हो गई है' उसी समय उन्होंने कहा–'देशी राज्यों पर लागू होने वाली संविधान की धाराओं के संविधान में इस समय जो संशोधन प्रस्तावित किए जा रहे हैं, उनमें उस रक्तहीन क्रान्ति के परिणाम समाए हुए हैं, जिसने बहुत ही कम समय में देशी राज्यों की आंतरिक और बाह्य



खेड़ा अन्दोलन से पूर्व सरदार वल्लभभाई पटेल

रचना को बिलकुल बदल डाला है।..... छोटे और बड़े 500 अटपटे देशी राज्यों का उपयुक्त आकार के घटकों में एकीकरण करके तथा सदियों पुराने निरंकुश शासन-तंत्रों का पूर्ण अन्त करके भारतीय लोकतंत्र ने महान विजय प्राप्त की है। इसके लिए राजाओं, महाराजाओं को तथा भारत के लोगों को गौरव अनुभव करना चाहिए। यह एक ऐसी सिद्धि है, जो इतिहास में किसी भी समय किसी भी राष्ट्र या प्रजा के यश को बढाने वाली मानी जानी चाहिए।'

स्वतंत्र भारत इसके लिए सदा सरदार वल्लभभाई पटेल की सूझ-बूझ और सशक्तता की याद करता है और सदियों तक याद करता रहेगा। जैसा कि उस काल के इतिहासकारों ने देशी रियासतों के विलीनीकरण पर अपनी टिप्पणी देते हुए कहा है– 'भारत राजनीतिक दृष्टि से एक ओर अखण्ड कभी नहीं रहा, जितना एक ओर अखंड बीसवीं शताब्दी में हुआ। यह इस युग की एक महान सिद्धि कही जाएगी। युग की सिद्धि युगावतारों द्वारा ही पूर्ण होती है। महात्मा गाँधी इन युगावतारों के महाआचार्य माने जाएँगे। देश की एकता और अखंडता के महायज्ञ में अपना-अपना योगदान देकर सब महापुरुष चले गए।'

इस प्रकार सरदार ने चाणक्य के साथ-साथ लौहपुरुष के कर्तव्य का निर्वाह भी किया, नहीं तो भारत टुकड़ों में विभक्त रहता। देश कभी भी उनके इस योगदान को भूल नहीं सकता है।

* * *

18

गाँधीजी का महाप्रयाण और सरदार

15 अगस्त 1947 को देश आजाद हुआ और ऐसा लगा कि भारत में स्वर्ण विहान आ गया। लेकिन उसके कुछ ही दिनों बाद 30 जनवरी 1948 को नाथूराम गोडसे नामक एक सिरफिरे युवा की गोली से बापू की हत्या ने देश को झकझोर दिया। स्वर्ण विहान अंधकार जैसा लगने लगा।

महात्मा गाँधी की हत्या दिल्ली के बिड़ला भवन में शाम की प्रार्थना सभा में हुई। उनके मुंह से अंतिम शब्द निकला–'हे राम!' यह हृदय विदारक घटना शाम 5 बजकर 10 मिनट के करीब हुई। उसके पहले गाँधीजी से मिलने वाले अंतिम व्यक्ति थे सरदार वल्लभभाई पटेल। वह 4 बजे शाम से 5 बजकर 5 मिनट तक बापू के पास थे। बापूको 5 बजे ही प्रार्थना सभा में शामिल होना था। लेकिन उस दिन सरदार के साथ गहन बातचीत के कारण 5 मिनट की देर हो गई। प्रार्थना सभा के बाद उनसे मिलने जवाहरलाल नेहरू आने वाले थे।

बापू का महाप्रयाण विश्व के लिए ही एक अघटित घटना थी शांति के पुजारी, अहिंसा के मसीहा और गुलाम भारत को आजादी दिलाने वाले सेनापति की हत्या कोई पागल व्यक्ति ही कर सकता था। हालांकि इसके पहले गाँधीजी की प्रार्थना सभा में

मदनलाल नामक एक युवा ने बम फेंका था और उसे पुलिस ने गिरफ्तार भी कर लिया था।

सरदार वल्लभभाई पटेल गृहमंत्री थे, इसलिए सुरक्षा और शान्ति की सारी जबाबदेही उनके ऊपर थी। बम की घटना के बाद से ही उनके ऊपर गाँधीजी की सुरक्षा के संबंध में प्रश्न उठाए जा रहे थे। बापू की हत्या के बाद तो कई ओर से गृहमंत्री के इस्तीफे की मांग भी होने लगी। सरदार से ज्यादा दुखी व्यक्ति गाँधीजी की मृत्यु के बाद शायद ही कोई हो। उस पर उनके ऊपर प्रहार। वे विचलित हो उठे। उन्होंने प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू से अपने त्याग पत्र की पेशकश की। लेकिन वे इसके लिए तैयार नहीं थे। पूरा देश भी इस बात को जानता था कि सरदार यदि इस समय त्यागपत्र दे देंगे तो देश छिन्न-भिन्न हो जाएगा।

जनवरी 1948 का महीना भारत के लिए बड़े ही दुर्भाग्य का महीना था। भारत और पाकिस्तान के अनेक हिस्सों में सांप्रदायिक दंगों की आग धू-धूकर जल रही थी। एक ही मिट्टी के सपूत एक-दूसरे की जान के प्यासे हो रहे थे। ऐसी स्थिति में गाँधीजी जिनका एक पाँव नौआखाली में रहता था, तो दूसरा बिहार में और तीसरा पंजाब में वह भारत की राजधानी दिल्ली के भड़के दंगों से कराह उठे और 13 जनवरी 1948 को अपने जीवन का अंतिम उपवास शुरू किया। उन्होंने कहा– 'वह अपना उपवास तभी तोड़ेंगे जब दिल्ली वास्तविक अर्थों में शांत हो जाएगी।'

कुछ लोगों ने प्रचार शुरू किया कि गाँधीजी का यह उपवास गृहमंत्री अथवा गृह-विभाग के विरुद्ध है। गाँधीजी सरदार पटेल को भाई की तरह प्यार करते थे, लेकिन रोजबरोज उनको भड़काने वालों की भी कमी नहीं थी। गाँधीजी कभी-कभी इस तरह का उद्‌गार भी व्यक्त कर देते थे। अतः कहा जाता है कि 30

जनवरी को सरदार पटेल ने गाँधीजी को अंतिम मुलाकात में यह निवेदन किया था– 'बापू, मुझे मंत्रीमंडल से अलग होने की अनुमति दीजिए, क्योंकि मौलाना आजाद सदृश कई ऐसे व्यक्ति हैं, जो मुझे और जवाहरलाल को एक देखना नहीं चाहते। वह हम दोनों में मनोमालिन्य पैदा करना चाहते हैं, ताकि मेरी अनुपस्थिति में 'जी हुजूरी' करके मनमानी कर सकें और मंत्रीमंडल में प्रभाव बढा सकें।'

गाँधीजी की इस संबंध में एक ही राय थी कि सरदार पटेल और पंडित नेहरू दोनों में किसी प्रकार का वैमनस्य न हो। दोनों एक रहें इसी में राष्ट्र की भलाई और मजबूती है। दानें के ऊपर ही देश का भविष्य निर्भर है। बापू के मन में सरदार पटेल के संबंध में यदि किसी प्रकार की शंका थी तो उसे भी दिल्ली में देखकर उन्होंने दूर किया और अपने भाषणों में बापू ने अल्पसंख्यकों के मन में सरदार के प्रति जो भ्रम था, उसे दूर करने की कोशिश की।

जैसा पहले कहा गया है गाँधीजी ने 13 जनवरी 1948 को जब आत्मशुद्धि के नाम पर दंगों की रोकथाम तथा हिन्दू-मुस्लिम ऐकता के लिए अनशन की शुरुआत की तो पूरा देश उनके स्वास्थ्य को लेकर चिन्तित हो उठा। अनेक लोगों ने गाँधीजी से प्रार्थना की कि वे उपवास न करें, लेकिन गाँधीजी अपने अनशन पर दृढ थे। उनका मानना था कि सत्य और अहिंसा के पुजारी के लिए सत्याग्रह से बढ़कर और कोई अस्त्र नहीं है। गाँधीजी ने अपने जीवन में अनेक बार इसका सफल प्रयोग किया भी था। बापू के इस अनशन पर सबसे अधिक चिन्तित सरदार स्वयं थे।

16 जनवरी को सरदार को सौराष्ट्र के दौरे पर जाना पड़ा जिसकी इजाजत उन्होंने गाँधीजी से ली। उस क्रम में बम्बई की विशाल सभा में बोलते हुए सरदार ने कहा– 'हमने स्वतंत्रता

हासिल की, उस समय हमारी प्रतिष्ठा बढ़ी थी, परन्तु उसके बाद की घटनाओं के कारण हमने वह प्रतिष्ठा खो दी है। अगर स्वतंत्रता पाने के बाद भी गाँधीजी को हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच सच्ची एकता स्थापित करने के लिए उपवास करना पड़े, तो यह हमारे लिए स्थायी कलंक की बात है। आपने अभी-अभी ये नारे सुने कि मुसलमानों को भारत से मार भगाओ। जो लोग ऐसा कहते हैं वे क्रोध से पागल बन गए है। जो मनुष्य क्रोध के कारण भान खो देता है, वह पागल से भी ज्यादा बुरा है।'

इन सभी बातों के बावजूद सच्चाई यह उभरती है कि राष्ट्रपिता की हत्या राष्ट्र के माथे पर कलंक के समान जड़ गई। सरदार इस दायित्व से मानसिक रूप से अपने को बरी नहीं कर सके तथा जिस दिन से गाँधीजी की हत्या हुई उसी दिन से वह मानसिक और शारीरिक दोनों दृष्टियों से उदास हो गए। उनकी पीड़ा बाहर नहीं निकल पा रही थी। मन ही मन वह घट रहे थे।

गाँधीजी की अंतिम इच्छाओं में सबसे बडी इच्छा थी कि सरदार और जवाहरलाल जी में किसी प्रकार का मनमुटाव न हो तथा दोनो एक साथ चलें। लुई फिशर ने अपनी किताब 'गाँधी की कहानी' में लिखा है—'गाँधीजी इस निर्णय पर पहुंचे कि नेहरू और पटेल एक दूसरे के लिए अपरिहार्य हैं। दोनों में से एक के बिना सरकार बिलकुल कमजोर हो जाएगी। इसलिए गाँधीजी ने नेहरू को अँग्रेजी में एक पर्चा भेजा, जिसमें लिखा था कि उन्हें तथा पटेल को देशहित में 'साथ बने रहना चाहिए'। 30 जनवरी को शाम के 4 बजे पटेल बिड़ला भवन में गाँधीजी से मिलने और यही संदेश सुनने आए थे।'

गाँधीजी के नहीं रहने पर नेहरू और पटेल दोनों के हृदय में यह विचार स्पष्ट रूप से आई कि बापू के नहीं रहने पर उन्हें एकजुट मजबूती के साथ रहना है और उन्होंने वैसा किया भी। नेहरूजी सदा पटेल को अपना बड़ा भाई मानते थे तथा उन पर

पूर्ण विश्वास करते थे, भले ही वे प्रधानमंत्री हों। दूसरी ओर सरदार जो अनुभव करते थे वह उद्गार उन्होंने स्वयं 2 अक्तूबर 1950 को मृत्यु के दो महीने पूर्व इन्दौर की सभा में इस रूप में प्रकट किया था– 'पं. जवाहरलाल नेहरू हमारे नेता हैं। बापू ने उन्हें अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया है। और इसकी घोषणा भी उन्होंने की है। बापू के सारे सैनिकों का फर्ज है कि वे जवाहरलाल जी के आदेश का पूरा-पूरा पालन करें। जो लोग उनके आदेश का पूरा-पूरा पालन नहीं करते, वे भगवान के अपराधी हैं। मैं बेवफा सिपाही नहीं हूँ। मैं जिस स्थान पर हूँ, उसके बारे में मुझे कभी विचार भी नहीं आता, मैं तो इतना ही जानता हूँ कि बापू ने मुझे जहाँ रखा था वहीं मैं हूँ।'

इस एक वाक्य से गाँधीजी, नेहरूजी और सरदार पटेल के बारे मे भरपूर प्रकाश पड़ता है और उसके बाद किसी प्रकार के भावनात्मक शक-सदेह की बात ही नहीं रहती।

* * *

19

अंतिम सांस तक कार्यरत

कवि दिनकर की दो पंक्तियाँ सहसा याद आ रही हैं–

'बड़ा वह आदमी जो जिन्दगी भर काम करता है,
बड़ी वह रूह जो रोए बिना तन से निकलती है'

सरदार वल्लभभाई पटेल के बारे में ये पंक्तियाँ कितनी सटीक बैठती हैं। बचपन से लेकर जवानी तक और जवानी से लेकर बुढापे तक उन्हें कभी भी आराम नसीब न हुआ। कर्म में विश्वास रखने वाले योद्धा के लिए आराम कहाँ? सरदार भी सही मानों में कर्मवीर थे।

इन बातों पर काफी प्रकाश डाला जा चुका है कि आजादी के बाद जब वे भारत के प्रथम उप-प्रधानमंत्री और गृहमंत्री हुए तो देश की विषम परिस्थितियों का भार उनके ऊपर ही आ गिरा। प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू की रुचि विदेशी मामलों में अधिक थी, अतः वे घरेलू मामलों का पूरा भार वल्लभभाई पटेल को सौंपकर निश्चिंत रहते थे। इधर सरदार पटेल का एक ओर स्वास्थ्य क्षीण होता जा रहा था, दूसरी ओर कामों का बोझ बढ़ता जा रहा था।

राष्ट्रीय संदर्भ की व्याख्या करने वाले हर इतिहासकार ने अखंड भारत के निर्माण में सरदार वल्लभभाई पटेल का जो

योगदान रहा है, उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। गाँधीजी से लेकर जवाहरलाल जी तक और दुर्गादास से लेकर के.पी.एस. मेनन तक इस बात के साक्षी रहे हैं कि सरदार न होते तो 563 देशी रियासतों के विलयन का मामला संभवतः खटाई में पड़ जाता। इसी भांति उस काल के प्रत्येक समझदार व्यक्ति का यह मानना है कि सरदार यदि दृढ़ता के साथ दंगों को न रोकते और प्रशासन को चुस्त-दुरुस्त न बनाते तो देश की आजादी खतरे में पड़ जाती। एक ओर जहाँ अँग्रेज इस बात की ताक में थे कि हिन्दुस्तानियों से शासन कार्य न चलेगा और पुनः हमें ही लौटकर आना पड़ेगा, वहीं दूसरी ओर देश की विघटनकारी शक्तियाँ भी तमाशा देखने में लगी थीं।

ऐसे समय में सरदार ने सिंह के समान गरजते हुए कहा—'लोग कहते है कि काँग्रेस ने मुल्क के टुकडे कर दिए। एक तरह से यह बात सच है। हमने सोच-विचारकर जिम्मेदारी ली है। किसी के डर या दबाव से नहीं.ली हिन्दुस्तान के टुकड़े करने का मैं सबसे कट्टर विरोधी था। लेकिन जब मैं केन्द्रीय सरकार में आकर बैठा तो देखा कि साम्प्रदायिक जहर चपरासी से लेकर ऊंचे अधिकारियों तक फैल गया है। ऐसी हालत में साथ रहकर लड़ते रहने और तीसरे से बीच-बचाव कराते रहने से अलग हो जाना ही अच्छा है।' इतनी साफगोई से अपनी बातें जो सही थीं सिवा सरदार के और कोई जनता से कहने की हिम्मत नहीं रखता था।

सभी जानते है कि देश 1947 में आजाद हुआ और सरदार हम से 1950 में ही विदा हो गए। इस प्रकार उन्हें मात्र तीन साल का समय ही भारत के नवनिर्माण के लिए मिल सका। लेकिन इसके लिए उन्होंने अपने जीवन का एक-एक क्षण अर्पित कर दिया। उनका रास्ता गाँधीजी का बताया रास्ता था, जिस पर निष्ठा के साथ चलने का सरदार प्रयास करते थे। उनके

सहयोगियों की सूची पर हम नजर डालें तो पाएँगे कि उनमें देश के सभी मूर्धन्य नेता थे। जवाहरलाल जी तो प्रधानमंत्री ही थे। उसके बाद राजेन्द्र बाबू, सी. राजगोपालाचारी, सी.डी. देशमुख, सरदार बलदेव सिंह, मौलाना आजाद, राजकुमारी अमृतकौर, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, शरतचन्द्र बोस, हरेकृष्ण महताब, बाबू जगजीवन राम जैसे दिग्गज नेताओं की मंडली सरदार के साथ काम में जुटी थी।

लेकिन इन सबों से सरदार पटेल का व्यक्तित्व भिन्न नजर आता है। उनकी दृढ़ता, साफगोई, साहस और किसी काम को चतुराई के साथ निबटाने का उनका सामर्थ्य और किसी में ढूढने से भी नहीं मिल सकता। ये बातें उन्हें किसी ने दी नहीं थीं, उन्होंने संघर्ष की आग में तपकर इन्हे हासिल किया था। सच बात तो यह थी कि उनकी भृकुटी के सहारे उस समय का इतिहास निर्मित हो रहा था। तभी तो बड़े-बडे राजे-महाराजे जिनका मुकुट किसी के सामने नहीं झुका था, सरदार के सामने उसे कर-कमलों से भेंट चढ़ा रहे थे।

लेकिन कोई नहीं जानता था कि शेर केवल बूढा ही नहीं हो रहा है, वरन् जल्दी-जल्दी अपने कामों को निपटाकर जाने की तैयारी भी कर रहा है। एक ओर लम्बे जेल जीवन और अनियमित रहन-सहन, भाग-दौड़ की जिन्दगी और करीने का ठौर-ठिकाना नहीं रहने के कारण उनका स्वास्थ्य पहले ही गिर गया था। उन्हें पाचन और कब्जियत की बीमारी ने धर दबाया था। उनकी आंतें अहमदनगर जेल के समय से ही उन्हें भयानक पीड़ा दे रही थी। गाँधीजी ने इसके लिए स्वयं उनकी प्राकृतिक चिकित्सा की, लेकिन बीमारी जड़-मूल से ठीक नहीं हो सकी। इधर कामों के बोझ ने उन्हें न तो दिन में आराम का मौका दिया और न रातों में पूरी नींद लेने का अवकाश ही मिला। नतीजा यह हुआ कि दिसम्बर 1950 से वे रोगग्रस्त होकर वायु परिवर्तन के

लिए बम्बई गए, जहाँ 15 दिसम्बर 1950 को प्रातः 9 बजकर 37 मिनट पर यमराज ने उन्हें अपने पास बुला लिया। करोड़ों भारतीयों को उस दिन ऐसा ही लगा मानों उनके सर का साया उठ गया। बापू के जाने के बाद पंडित नेहरू और सरदार पटेल की जोडी पर ही भारतीय जन का भरोसा था, वह जोड़ी बिछुड़ गई।

मृत्यु के दो महीने पूर्व सरदार हैदराबाद-सिकन्दराबाद की यात्रा पर गए थे, तो वहाँ हिन्दी प्रचार-सभा की ओर से उनके सम्मान में एक वृहद आयोजन किया गया था तथा मानपत्र अर्पित किया गया था। मानपत्र का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था– 'मुझे मानपत्र देने की कोई आवश्यकता नहीं है और न इसका अभी कोई समय ही आया है। जब आदमी दुनिया छोड़कर चला जाता है, असल मानपत्र तो उसके बाद मिलता है। क्योंकि कोई आदमी जब आखिरी दिन तक जब कोई गलती न करें, तब उसकी इज्जत रहती है। लेकिन यदि आखिरी उम्र में दिगाम पलट जाए तो सारी करी कराई ही खत्म हो जाती है। इसलिए हमें ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि आखिर दम तक हम शुद्ध और निःस्वार्थ भाव से जनता की सेवा करते रहें, ऐसी ताकत हमको मिले।' जिस आदमी ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में अपने बारे में इतना कुछ कह दिया, उसके बारे में और क्या कहा जाए?

सेठ गोबिन्ददास जी ने सरदार पटेल नामक पुस्तक में सही लिखा है– 'सरदार पटेल का समूचा जीवन भारतीय जनता और जाग्रत भारत की एक ऐसी कहानी बन गया है, जिससे उसका अतीत तो गौरवान्वित हुआ ही, उसका आज और अनागत भी गौरव की गरिमा से सदा भरा रहेगा। भारत की भावी संतान सरदार के जीवन से सदा प्रेरणा और प्रोत्साहन ग्रहण करेगी। इतना ही नहीं उसको उनकी जो देन है उसको विस्मृत करना कठिन ही नहीं, असंभव होगा।'

सरदार पटेल का कहना था– ऐसा कोई विघ्न नहीं है, जो दूर न किया जा सके।' इस वाक्य की चरितार्थता उन्होंने स्वयं कर दिखाई थी।

वारडोली सत्याग्रह के समय उन्होंने कहा था–'किसान डरकर दुख उठा ये और जालिमों की लातें खाए, इससे मुझे शर्म आती है। मेरे दिल में आता है कि किसान को कंगाल न रहने देकर खड़ा कर दूं और स्वाभिमान से सिर ऊंचा करके चलने वाला बना दूं। इतना करके मरूं, तो अपना जीवन सफल समझूं।' भारतीय किसानों से सही प्रतिनिधि थे तथा उनके लिए जो सपना उन्होंने देखा था, उसे ज़ीवन में ही पूरा कर दिया। वास्तविकता यह है कि आज लोकतंत्र का ढांचा समाज के उन्हीं वर्गों पर खड़ा है, जो गांवों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

सरदार पटेल की मृत्यु के बाद श्रंद्धाजलि अर्पित करते हुए पं. जवाहरलाल नेहरू ने कहा था–'वे एक ऐसी शक्ति के स्रोत थे, जो कांपते दिलों को साहस प्रदान करते थे।'

सरदार जब 12 दिसम्बर 1950 को बम्बई स्वास्थ लाभ के लिए रवाना हुए थे तो उन्हें हवाई अड्डे पर विदा करने हेतु राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद और प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू दोनों मौजूद थे। सरदार ने जवाहरलाल जी को देखकर उस दिन कहा था–'जवाहरलाल जी के सिर पर बहुत बड़ा बोझ है।' यह बोझ सच में उस दिन पड़ गया जिस दिन सरदार न रहे।

मोरारजी भाई देसाई ने ठीक ही कहा है–'सरदार साहब के जीवन से हमें अनेक बातें सीखने को मिलती हैं। हमारी राष्ट्रीय जागृति के इतिहास में उनका स्थान प्रथम श्रेणी के वीर पुरुष का है।'

हमारा राष्ट्रीय संग्राम जिन दो-चार लोगों को अपने सामने रखकर गौरव का अनुभव करता है, उनमें सरदार सबसे आगे

दिखाई देते हैं। किसी भी व्यक्ति का सबसे बडा मानदंड यही है कि जब भी कोई बड़ी समस्या आ खड़ी हो तो ऐसे में उसकी याद आए। आज भी जब कभी स्वतंत्र भारत की नांव भंवर में फँसती है, तो लोग सरदार वल्लभभाई पटेल को याद करते हैं—काश, आज सरदार होते।

सरदार केवल श्रद्धा या श्रद्धांजलि के ही पात्र नहीं हैं, वरन् भारत के लिए एक ऐसे आदर्श हैं, जिनका अनुसरण कर हमारी नई पीढ़ी बहुत कुछ ग्रहण कर सकती है।

* * *

20

जीवन-वृत्त

31 अक्तूबर 1875	गुजरात के नदियाड में जन्म
1891	16 वर्षा की आयु में शादी
1897	नदियाड हाई स्कूल से मैट्रिक
1902	नदियाड से बोरसद स्थायी निवास हेतु
1904	पहली संतान मणिबेन का जन्म
1905	दूसरी संतान डाह्याभाई का जन्म
1909	पत्नी झवेरबाई की मृत्यु
1910	बैरिस्टरी पढने के लिए इंगलैंड रवाना
1913	बैरिस्टरी की परीक्षा पास कर स्वदेश वापस
1917	पहली बार अहमदाबाद नगरपालिका के म्युनिसिपल-काउंसिलर निर्वाचित
1917	गुजरात-सभा के सचिव मनोनीत
1917	गाँधीजी के संपर्क में आना
1017-18	गुजरात के अकाल में बड़े पैमाने पर सहायता कार्य की शुरुआत और संचालन करना
1918-19	किसानों के बीच कार्यारंभ
1920	गुजरात सभा के अधिवेशन में असहयोग-आन्दोलन के प्रस्ताव को स्वीकृत करवाना
1921	विदेशी वस्त्रों की होली जलाकर खादी पहनने का व्रत

1923	नागपुर में झंडा-आन्दोलन का सफल नेतृत्व
1924	अपना स्वतंत्र दल बनाकर अहमदाबाद म्युनिसिपलिटी का चुनाव लड़ना, लड़वाना और 48 में से 35 सीटों पर विजय तथा स्वयं चेयरमैन पद पर आसीन होना।
1924-1928	अहमदाबाद नगरपालिका के चेयरमैन
1927	गुजरात में भयंकर बाढ से पीड़ित लोगों की सहायता हेतु बड़े पैमाने पर रिलीफ का काम
1928	बारडोली-आन्दोलन का सत्याग्रह की शुरूआत
1928	बारडोली के सरदार नाम से गाँधीजी द्वारा विभूषित और 'सरदार' नाम प्रचलित
1929	महाराष्ट्र राजनीतिक सम्मेलन के अध्यक्ष
1930	पहली बार जेल-यात्रा
1930	दूसरी बार जेल-यात्रा
1931	करांची में कॉंग्रेस महाधिवेशन के अध्यक्ष
1932-33	गाँधीजी के साथ ही यरवडा जेल में बंदी
1932	यरवडा जेल में थे तभी माता की मृत्यु
1933	बड़े भाई विठ्ठलभाई पटेल की जेनेवा में मृत्यु
1934	जेल से मुक्ति और हरिजन-फंड इकठ्ठा करना
1935-40	कॉंग्रेस संसदीय मंडल के अध्यक्ष, चुनाव-प्रभारी
1940	नजरबंद
1941	व्यक्तिगत सत्याग्रह में शामिल
1941	नजरबंद और उसी साल जेल-मुक्त
1942	भारत छोड़ो आन्दोलन में प्रमुख भूमिका बम्बई-कॉंग्रेस में प्रस्ताव का समर्थन
1942-45	गाँधीजी के साथ अहमदनगर जेल में नजरबंद
1946	अन्तरिम सरकार में नेहरू-मंत्रीमंडल में गृह, सूचना और प्रसारण विभाग के मंत्री

1947	देशी-रियासतों के विलयन का ऐतिहासिक कार्य संपन्न करना
1948	गृहमंत्री के साथ ही देश के प्रथम उप-प्रधान मंत्री
15 दिसम्बर 1950	दिल के दौरे से बम्बई में 75 वर्ष की आयु में मृत्यु